वर्ष ८, अंक ५

श्रीकृष्णाय नमः

माघ पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय-सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	...	१२९
२.	मधुर मालिका	[ले० श्री प्रेम [illegible]	१३०
३.	मैं कौन हूँ ?	[ले० श्री "[illegible]"	१३१
४.	प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण	[ले० श्री भगवान मथुरा प्रसाद जी	१३४
५.	(कविता)	[ले० श्री पं० शिवशंकर जी	१३६
६.	राम	[ले० श्री महात्मा राम	१३६
७.	तुलसी कृत रामायण का [illegible] प्रकरण	[ले० श्री महा. रामप्रसाद [illegible]	[illegible]
८.	वासना (कविता)	[रचयिता श्री [illegible] "प्रभाकर"	[illegible]
९.	उपासना [illegible]	[ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी	१४४
१०.	चरित्र और जीवन	[ले० श्री शिवराम ब्रह्मचारी	१४६
११.	योगसाधन	[ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	१४९
१२.	[illegible] छन्द	[रचयिता श्री महात्मा सच्चिदानन्द जी	१५१
१३.	महात्मा [illegible]	[ले० श्री डा० [illegible] दास जी	१५४
१४.	भजन	...	१५६

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) या इस से अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखों का प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस से बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी १२५)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर १२१)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरी पोप्राइटर झरिया १०१)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमें[illegible]
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह [illegible]
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई [illegible]रामपु[illegible] ५
चौधरी शिवसहाय जी कोसली [illegible]
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली ५१
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास ५१)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा ५१)
पण्डित पन्नालाल जी कारखाना नं० ६ अम्बाला ५४)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली ५०)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' दहली २५)
बख्शदार चांपचन्द जी ५)
५)

"भक्तिप्रेस" आश्रम, रेवाड़ी

महात्मा सूरदास जी

बांह छुड़ाये जात हौ, निबल जानिकै मोहि।
हिरदै से जब जाहुगो मर्द बदौंगो तोहि॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, माघ पूर्णिमा, दिसम्बर १९३३ | अंक ५ पूर्ण संख्या ८८

वेदोपदेश

अभि नो देवीरवसा महः शर्म्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ १ ॥

अच्छिन्नपत्रा या दुःखगामिनी और मनुष्यरक्षिका देवी रक्षण और महान् सुख-प्रदान द्वारा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १ ॥

इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये। अग्नायीं सोमपीतये ॥ २ ॥

अपने मङ्गल के लिये और सोम-पानके लिये इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी या अग्निपत्नी को हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३ ॥

महान् द्यु और पृथिवी हमारा यह यज्ञ, रससे सिक्त करें और पोषण द्वारा हमें पूर्ण करें ॥ ३ ॥

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ ४ ॥

पृथिवी ! तुम विस्तृत, कण्टक-रहित और निवासभूता बनो हमें श्रेष्ठ सुख दो ॥४॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ ५ ॥

जिस भू-प्रदेशसे, अपने सातों छन्दों द्वारा विष्णुने विविध पाद-क्रम किया था, उसी भू-प्रदेश से देवता लोग हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

चतुर नाविक

(ले० प्रेम-पथ पथिक)

'रोको, रोको, ठहरो, जरा ठहरो मुझे भी पार जाना है, कोई व्यक्ति अधीर हो कर करुणा और आशा भरे शब्दों में कह रहा है। उसके मन में उत्साह है, हृदय में आशा है और है आंखों में आँसू की बूंदें।

नाव की लंगर उठ चुकी थी। नाविक नाव को किनारे से हटा रहा था। सूर्य देव अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी कर रहे थे। पश्चिम की ओर लालिमा आकाश की शोभा बढ़ा रही थी। उस लालिमा का प्रतिबिम्ब जल पर पड़ जल के हिलोरों के साथ किलोल कर रहा था। आकाश में पक्षीगण मधु शब्द करते हुये अपने २ घोसलों की ओर तेजी से उड़े जा रहे थे।

नाविक उपरोक्त शब्दों को सुन जरा ठिठक गया। उसने नाव खेना बन्द कर दिया। देखा, सामने से एक नवयुवक पागल की नाईं दौड़ा आ रहा है। उसे खबर नहीं कि इसका पांव कहां पड़ता है। वह हाथ के इशारे से नाविक को नाव रोकने के लिये कह रहा है। नाव के यात्रियों को भी बड़ी कुतूहल हुई। उन्होंने भी नाविक से प्रार्थना की कि जरा नावको रोक दे।

वह युवक तीर की नाईं दौड़ता हुआ किनारे पर आ पहुंचा। वह इतनी तेजी से दौड़ा आया था कि उसके दम फूल रहे थे और कुछ कहने से लाचार था। वह चाहता था कि नाव पर चढ़ूं पर वह इतना थका और परेशान था कि अब एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता था। अपने हाथों को जोड़े हुये करुणा दृष्टि से नाविक की तथा यात्रियों की ओर देख रहा था। उसकी ऐसी अवस्था देख यात्रिगण किंकर्तव्य विमूढ़ से होगये। संध्या हो चली थी इसलिये नाविक ने कहा—बस, अब देर करना ठीक नहीं। आप सावधान होवें।

इस पगले के फेर में न पड़िये।' 'पागल' का शब्द उस निर्दयी नाविक के होठों से पड़ते ही उसकी दृष्टि बदल गई। उसका मुख गहरे लाल रंग का हो गया। उसकी भवें चढ़ गईं। उसका शरीर क्रोध से कांपने लगा। वह कहने लगा:—

अरे निर्दयी नाविक! क्या तुझे शर्म नहीं आती। मैं इतनी दूर से तेरी ही आशा पर दौड़ा आया हूं और तू मुझे इस प्रकार अवहेलना की दृष्टि से देखता है। छी! छी!! क्या तू अपने कर्त्तव्य को भूल बैठा है। क्या तू समझता है कि 'पागल' कह देने से मैं पागल हो जाऊंगा और तेरा पीछा छोड़ दूंगा। नहीं कभी नहीं हरगिज नहीं, तीन काल में भी ऐसा नहीं हो सकता। मैं तुझे हरगिज, हरगिज नहीं छोड़ सकता। याद रख यदि तू मेरे साथ इसी प्रकार छेड़खानी करता रहेगा तो जगत् तुझे निष्ठुर और कठोर कहेगा। जरा विचारो तो सही कि नाविक का कार्य कितना सुन्दर और साथ ही साथ उत्तरदायित्वपूर्ण है। तुझे नौका इस लिये नहीं मिली है कि तू अपने मन मानी और दिल ज्ञानी कर दे। ऐ पाषाण-हृदय नाविक! जरा सोच तो सही कि क्या तेरा काम इस भवसागर से पतितों को पार करने का नहीं है। यदि नहीं है तो आज से दीन बन्धु की पदवी त्याग दे। क्या कहा। संध्या हो रही है, जल्दी है! अगर संध्या होती है तो मेरी तेरी बला से। यह तो रोज ही हुआ करती है। क्या तू भी साधारण नाविकों की नाईं संध्या की धमकी दे मुझे टरकाना चाहता है?

मैंने खूब सोच समझ लिया है। मुझे मंजूर है कि तू मुझे मझधार में डुबा दे पर किनारे पर कुत्ते की मौत न मार। तू मुझे भंवरों और तूफानों से मत डरा। इनसे तो वही डर सकता है जिसे अपने प्राणों का मोह हो! मैंने तो पहले ही इन पामर प्राणों को तेरे चरणारविन्दों पर न्योछावर कर दिया है। मैंने तो पहले ही इस नश्वर शरीर को तेरी बलिवेदी पर बलिदान कर दिया है। फिर डर किस बात का, भय किस वस्तु का? ये मुझे भंवर कुछ नहीं कर सकते। मुझे तूफानों का तनिक भी भय नहीं है, बस अगर भय है तो केवल तेरे कृपा कोर का। ऐ चतुर नाविक! इस प्रकार मेरी अवहेलना कर तू पछतावेगा। तुझे मेरे लिये नींद न आयेगी और तू मेरी खोज में गलियों की खाक छानता फिरेगा।

क्या कहा मैं पतित हूं? हां, मैं मानता हूं मैं शतबार नत मस्तक हो इसे स्वीकार करता हूं पर तुम्हीं बताओ तो सही कि क्या मैं तेरा पुत्र नहीं हूं? फिर यदि एक नाविक का पुत्र डूब जाये तो संसार तुझे क्या कहेगा। क्या तेरे ललाट में कलंक का टीका न लग जायेगा। जरा तुम्हीं बताओ कि मैं पतित हूं और तुम हो पतित पावन। यदि तुमने मुझे पावन नहीं किया तो क्या इसमें तुम्हारी बदनामी नहीं होगी? जरा गौर से विचारो तो सही कि तुम भवसागर से पार उतारने के ठेकेदार हो और मैं हूं तुम्हारा पुत्र। यदि मैं यहीं तट ही पर मर गया तो क्या तुम पुत्र विहीन नहीं हो जाओगे और क्या तुम्हें यह कहते लज्जा न आवेगी कि एक नाविक का पुत्र किनारे पर ही मर गया?

ऐ चतुर नाविक! अब अधिक सोच विचार न कर नाव किनारे लगा, लंगर डाल दे और मुझे भी, अगर पुत्र के नाते नहीं तो कम से कम यात्री के नाते नाव पर रख पार ले चल! हां यह ठीक है कि मेरे पास पार उतराई के लिये पैसे नहीं हैं पर इससे क्या हुआ। मैंने सुना है कि तू बिना पैसे वाले का भी पार उतार दिया करता है। कहो तो हजारों

नज़रें पेश करूं। अभी उस दिन की बात है। बेचारा ग्राह गज के मुख में पड़ मौत की घड़ियां गिन रहा था। उसके पास कुछ भी तुझे अर्पण करने को न था बस झट उसे एक युक्ति सूझ पड़ी और तुझे एक पुष्प ही सौंप दिया। तू भी रीझ गया और उसे पार कर दिया। अभी उस दिन इसी प्रकार केवल करुण पुकार पर द्रौपदी की लज्जा रखली। तो फिर मेरे पास पैसे नहीं हैं तो क्या हुआ। दिल में अरमान तो है। लो मैं यह अपना शरीर अपना सर्वस्व ही तुम्हारे कदमों पर चढ़ा देता हूं।

इतना कह युवक थोड़ा आगे बढ़ा और अड़ड़धम गंगा की गोद में जा पड़ा। नाव कुछ आगे बढ़ चुकी थी। यात्रियों का कलेजा कांप उठा। गंगा का जल स्थिर हो गया। सूर्य देव डूबना भूल गये। पक्षियों ने अपना कलरव बन्द कर दिया॥

नाविक अपनी जगह छोड़ धड़ाम से जल में कूद पड़ा और उस नवयुवक को लिये नाव पर चढ़ गया। यात्रियों का हृदय कुसुम खिल उठा और आकाश में आनन्द के बाजे बजने लगे और पुष्पवृष्टि होने लगी। आकाशवाणी हुई—'बोलो भक्त और भगवान् की जय"।

——

मैं कौन हूं ?

(ले० श्री "दिनेश")

भगवन! मैं कौन हूं? मैं कहां हूं? तूने मुझे कहां भेज दिया? मैं तो समझ ही नहीं रहा हूं कि मैं यहाँ किसलिये आया हूं। मेरा यहां क्या काम होगा? प्रवीण नट नागर! तुम्हारी लीला का तो पता ही नहीं चलता। मैं यहाँ पहुंच तो गया हूं पर "किं कर्तव्य विमूढ़" होकर। आते समय तुमने क्या संदेश दिया था यह तो मुझे याद ही नहीं। तेरा क्या उद्देश्य था यह तो मैं समझ ही नहीं पाता। बना, बना, आखिर मुझे यहां भेजने का कोई मतलब होगा।

लीलाधाम! सुना है तुम खेल तमाशे के बड़े प्रेमी हो। यदि तुम्हें लीला ही करनी थी तो क्या मुझे अपने ही समीप रख कर नहीं कर सकते थे! अगर तुम्हें मेरा नाच ही इतना प्यारा था तो वहीं अपने इशारे पर मुझे नचा लेते। मैं स्वयं तुम्हारे समक्ष नृत्य करता एवं तुम्हें ही प्रसन्न करने की यथा साध्य चेष्टा करता।

प्यारे नट नागर! अगर तुम्हारी यही इच्छा थी तो मुझे इतनी दूर भेज देने की क्या आवश्यकता पड़ी। वहीं पर तुम्हारा सारा काम बन जाता। फिर क्या कारण कि तुमने मुझे इस अंधेरी कोठरी में धकेल दिया जहां मुझे कुछ सूझता ही नहीं? अरे, तुमने आते समय क्या कहा था? तेरा क्या विशेष उद्देश्य था? ये सब बातें तो विस्मृति सी हो रही हैं। पुनः अब भी नाथ! इसे स्मरण क्यों नहीं करा देते। दया सागर! तुम तो दया के पुञ्ज हो न, फिर मेरे प्रति इतनी निर्दयता कैसी? तुम तो प्रेमी हो—नहीं, नहीं प्रेम स्वरूप हो न, फिर मेरे लिये तुम निर्मोही कैसे? खैर यदि ऐसी ही इच्छा थी तो क्या मैं इस अवस्था में तुम्हारे पवित्र संकेत से भी वञ्चित रहा। जो तुम्हारे बराबर खेला करता था, क्या अब उसकी झांकी भी दुर्लभ है? क्या तुम्हारी असीम दयालुता का यही परिचय है? देव, जरा बतलाओ भी तो कि मैं यहां किस लिये आया हूं? मुझे यहाँ क्या करना है। विश्वदेव! मुझे इस बाजार में पता ही

नहीं लगता कि कौन, कौन सी चीजें खरीदनी हैं ? मुझे क्या सौदे करने हैं। यहां तो चीजों की भरमार है क्या तुम यही चाहते हो कि इन्हीं चीजों के बीच घबड़ा जाऊं। दयासिन्धु मुझे भी वह दिव्य चक्षु प्रदान करो, जिसकी सहायता से पथ-भूमित तुलसी और अन्धे सूर ने अपने सौदे को पहचाना था। मेरी आंखों में वह लगन भरदो जिस लगन में मस्त होकर पागल चैतन्य तुम्हारे सामने देखकर नाचा करते थे। क्योंकि तुम यहां भी तो हो। आह! मैं तो यहां पागल सा हो रहा हूं। मैं क्या जानता था कि हमारी यह अधोगति होगी। ओह, व्यर्थ ही तुमने मुझे इस गढ्ढे में गिरा दिया। खैर यह भी मुझे कबूल है। पर क्या यहीं तक तुम्हारे कर्त्तव्य की सीमा थी? नाथ! तुमतो असीम एवं अनन्त हो न।

पतित-पावन! अबतो मैं पतित होही चुका न मालूम क्या किया था किस पाप का यह फल भोगना पड़ा इसका प्रायश्चित्त करना पड़ा। जो किया उसका फल भोग ही रहा हूं पर अब भी तो अपनी असीम दया का पात्र बनाओ। भगवन्! मेरे पासतो कुछ रह ही नहीं गया जिसकी सहायता से पुनः तुम्हारे समीप तक पहुंचने का साहस करूं। मैंने तो सब खो दिया। अबतो मुंह दिखाने के लिये भी कुछ न रह गया है।

नहीं ऐसी कोई बात तो नहीं है। मैं ही तो तेरी दया का सच्चा अधिकारी हूं। तुम्हारे साथ मेरा ही सम्बन्ध सबसे अधिक घनिष्ट है न, तुम जानते ही हो, मैं हूं पतित और तुम हो पतित बन्धु। तुलसी ने भी इसी प्रकार सुर में सूर मिलाते हुये कहा है।

मैं हरि पतित पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित पावन, दोउ बानक बने॥

अब तुम मेरे हो हो न, पुनः मुझे उद्धार करने में अब तुम्हें हिच किचाहट ही क्या? इसी से तुम अपने नाम की सार्थकता का प्रमाण भी दे सकते हो।

अब बहुत हो चुका मैं अपनी नैया को तुम्हारे हाथ सौंपता हूं। नाथ! मुझे आशा ही नहीं बल्कि विश्वास है तुम इसे स्वीकार करोगे ही। कुछ हो, अब मुझे इससे वास्ता क्या? जानो तुम न, जानो तुम।

प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण

(ले० भक्त रत्न श्री मथुरा प्रसाद जी)

महानुभाव श्रीहरिव्यास देव जी द्वारा वर्णित हरि शरणागत निज दासों के लक्षण- (महावाणी)

विधि निषेध आदिक जिते कर्म धर्म तज तास।
प्रभु के आश्रय आवहीं सो कहिये निज दास॥

ऊपर के दोहे में भगवत् गीता के शरणागति मत का आशय लिया गया है। (सर्वधर्मान् परित्यज्य इत्यादि) आगे चल कर स्वयं महात्मा जी विस्तार से इसका अर्थ समझाते हैं कि:-

जो कोई प्रभु के आश्रय आवे। सो अन्याश्रय सब छिटकावे॥
विधि निषेध के जे जे धर्म। तिनका त्याग रहै निष्कर्म॥

गीता के शरणागति मन्त्र और इस सन्त वानी में प्रयोजन यह ही बताया गया है कि अपने इष्टदेव के सिवाय दूसरे किसी का सहारा न लेकर अपने इष्टदेव ही से जो आवश्यकता हो मांग ले। उसीको सब कुछ करने लायक समझे।

परन्तु अनन्य भाव का अर्थ समझने में आज कल वैष्णवों में बड़ी भारी विषमता पाई जाती है। प्रायः चारों सम्प्रदाय के आश्रित वैष्णव ऐसा बर्ताव करते दिखाई देते हैं कि अपनी २ सम्प्रदाय के अनुसार नियमों का पालन करते हुए दूसरी सम्प्रदाय

के सेवा विधान तथा नियमित आचरणों को अन्य मार्गीय मान कर हेय दृष्टि से देखते और एक दूसरे की निन्दा में प्रवृत्त हो जाते हैं। यहां तक कि दूसरी संप्रदाय वाले वैष्णवों के हाथ का प्रसाद तक पाने में संकोच करते हैं और उन्हें भेद बुद्धि से देखते हुए संकुचित वैष्णव ही नहीं मानते। और शैव शाक्त आदिकों को तो घृणा की दृष्टि से देखते हुए पूरे द्वेषी बन जाते हैं।

ऐसा बर्ताव सम्प्रदायिक वैष्णवों का केवल अनन्य शब्द के यथोचित अर्थ के अज्ञान से है।

अनन्य शब्द का यह अर्थ है कि 'नास्ति मदुपास्य देवादन्यो भिन्नः कोपि परात्परः पूज्यः सर्वेश्वरः। किन्तु नाना रूप धरो ममेष्टदेव एव सर्वत्रोपास्यते"

मेरे उपास्य देव से न्यारा कोई सब से परे (उच्चकोटिका) कोई सब का स्वामी और पूजने योग्य नहीं है। किन्तु अनेक रूप धारण करके मेरा इष्ट देव ही सब जगह उपासना किया जारहा है यदि ऐसा अर्थ न करके अन्य उपास्य देवों को अपने पूज्य देव से भिन्न समझा जाय तो भगवान् कृष्ण का (भगवद्गीता का) यह वचन कैसे चरितार्थ होगा कि-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
नान्यः परतरंनान्यत् किंचिदस्ति धनंजय॥ इत्यादि

अर्थात् भगवान् आज्ञा करते हैं कि जो मुझे सब जगह देखता है और सब को मुझ में देखता है उससे न मैं कभी अलहदा होता हूं और न वो मुझ से कभी न्यारा होता है। और भी साफ कह दिया है हे अर्जुन मुझ से न्यारा कोई नहीं है। अर्थात् मुझ से अन्य (भिन्न) कुछ है ही नहीं।

जो महात्मा पूर्ण भगवत् भक्त या ज्ञानी है, वो चाहे किसी सम्प्रदाय के आश्रित हो, राम भक्त हो, या कृष्ण उपासक या नरसिंह वामन आदि किसी अवतार के वे अपने उपास्य देव को ही सब जगह देखते हैं। यदि राम भक्त है और कृष्ण मंदिर में गये तो ऐसी धारणा के साथ दर्शन करें कि हमारे इष्ट देव श्रीराम ही इस रूप में विराजे हैं उन्होंने कृष्ण रूप में प्रकट हो कर व्रज लीला की है और कृष्ण भक्त जब राम मन्दिर में जाय तो यह विचार करें कि हमारे इष्टदेव श्रीकृष्ण यहां कीट मुकुट धनुष आदि धारण किये विराज रहे हैं वोही त्रेता युग में रघुवर कहलाये और उन्हीं ने रावण आदि बली असुरों को मारा था। और वास्तव में देखिये तो जैसे नाटक घर में नट अनेक रूप धारण करके नाना प्रकार के कौतुक दिखा कर दर्शकों को मुग्ध कर देता है उसी प्रकार एक ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भिन्न २ समय में धर्म की रक्षा और अधर्मियों के दमनार्थ अनेक रूप धारण करके प्रकट हो जाता है।

महात्मा सूरदास जी ने बहुत से पदों में श्रीकृष्ण महाराज के सद्गुणों का प्रकाश करते हुए वर्णन किया है कि आपने अहल्या का निस्तार किया आपने केवट और गीध आदि का उद्धार किया विभीषण को शरण में लिया इत्यादि और महात्मा तुलसी दास जी ने श्रीरघुनाथ जी के गुणानुवाद वर्णन करते समय कहा है कि भगवन्! आप ऐसे दीन बन्धु भक्त वत्सल हैं कि आपने द्रौपदी का चीर बढ़ाया सुदामा दरिद्री को निहाल कर दिया पूतना बाल घातिनी को माता की गति दी इत्यादि। अब गौर कीजिये कि यदि राम और कृष्ण एक न माने जाते और उपास्य देव भिन्न २ माने जाते तो पदों में ऐसा वर्णन कब हो सकता था। राम ने कब द्रौपदी की चीर बढ़ा कर रक्षा

की थी उनके समय में द्रौपदी का जन्म ही नहीं था। न रघुनाथ जी के समय में सुदामा या पूतना हुए। और कृष्ण जी ने अहल्या का उद्धार कब किया था। और उनके समय में विभीषण केवट गीध का चरित्र कब हुआ। हजारों लाखों वर्ष का अन्तर था। देश काल का बड़ा भारी भेद होने पर भी महात्माओं ने उन दोनों महापुरुषों का अभेद मान कर उस प्रकार की पद रचना की सब विष्णु भक्त जानते हैं।

फिर भी भेद भाव को नहीं तजते यहाँ तक देखने में आता है कि अनन्य वैष्णवता के अभिमानी राधावल्लभ सम्प्रदाय वाले श्रीगोविन्द देव का चरणोदक या भोग लगा हुआ महा प्रसाद ग्रहण नहीं करते और गोकुल सम्प्रदाय वाले या श्रीवैष्णव अपने से भिन्न सांप्रदाय वालों के महाप्रसाद लेने में संकोच करते हैं। और कह बैठते हैं कि हम अनन्य भाव के आश्रित हैं तुलसीदास जी का उदाहरण देते हैं कि वोह व्रज में पधारे तब उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रणाम न करके यह वचन कहे कि:-

तुलसी मस्तक जब नमै धनुषबान लो हाथ।

परन्तु इस दोहे में जब नमै अशुद्ध पाठ है यो दोहा शुद्ध ऐसा है-

कहा कहूं छवि आप की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक नमत है धनुषबान लो हाथ॥

गोस्वामी जी ने अपनी रामायन में खल और नीच दुष्टों तक को प्रणाम किया है। भला कब ऐसा संभव हो सकता है कि वे श्रीकृष्ण महाराज को प्रणाम न करके हट करके ऐसा शब्द मुख से निकालते कि आप जब धनुषबान धारण करें तब ही मैं प्रणाम करूंगा। कदापि ऐसा नहीं हो सकता।

(२) जिस समय स्वामी जी ने उक्त दोहा पढ़ा भगवान् मुरली और मोर मुकुट धारण किये थे और उन्हीं को गुसाईं जी ने पहले के आधे दोहे में भले बने हो नाथ ऐसा कहा है अर्थात् श्रीकृष्ण स्वरूप को अपना स्वामी कह कर संबोधन किया तो ऐसा नहीं कह सकते थे कि आपको धनुषबान धारन किये बिना मैं प्रणाम ही नहीं करूंगा।

(३) स्वयं गोस्वामी जी ने रामायण में लिखा है कि-

सिया राम मय सब जग जानी।
करूं प्रणाम जोर जुग पाणी॥

जब सारे जगत् को सियाराम मय मान कर प्रणाम कर चुके तो भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम न करते ऐसा कब संभव था। उपरोक्त कारणों से "जब नमै" का पाठ अशुद्ध और नमत है शुद्ध सिद्ध हुआ। जो धनुषबान धारण करने की प्रार्थना तुलसीदास जी ने क्यों की इसका साफ और स्वच्छ प्रयोजन ये ही था कि लोक जो राम और कृष्ण में भेद बुद्धि रखते हैं वो दूर हो जाय इसी जिताने के लिये गोस्वामी जी ने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की कि मैं आपको और श्रीरघुनन्दन महाराज अपने इष्ट को भिन्न न जान कर प्रणाम कर रहा हूं आप कृपया समस्त जनता को अभेद बुद्धि प्राप्त हो जाने के निमित्त धनुषबाण धारण करके मेरी अभिन्न दृष्टि की पुष्टि और सर्व साधारण की भ्रम निवृत्ति कर दीजिये वैसा ही हुआ। कि (अपने जन के कारणे कृष्ण भये रघुनाथ) अब महावाणी में जो ऐसी आज्ञा है कि (जो कोई हरि के आश्रय आवै। सो अन्याश्रय सब छिटकावै) इसका तात्पर्य स्फुट दीख रहा है कि जब शरण में आये हुये भक्त को सर्वत्र अपने इष्ट की ही भावना दृढ़ हो जायगी तो सिवाय अपने पूज्य शरण्य देव के दूसरा कोई पूज्य परात्पर रहैगा ही नहीं तो अपने इष्ट को छोड़ कर दूसरे

किस का सहारा ढूंढ सकेगा। आगे विधि-निषेध के धर्मों को त्याग के निष्कर्म रहने की जो आज्ञा है वह भी भगवदाज्ञा के अनुसार ठीक ही है। "सर्व धर्मान् परित्यज्य" जो गीता में महावाक्य है इस के अर्थ भी आचार्यों ने कई किये हैं।

(१) एक अर्थ श्रीरामानुज भाष्य के अनुकूल तो यह है कि गीता के अठारवें अध्याय में त्याग और संन्यास शब्दों का अर्थ जो स्वयं भगवान् ने बतलाया है उसमें त्याग का अर्थ यह दिया है कि फल की इच्छा न रख कर और असंग अर्थात् 'अहंकरोमि' इस भाव को त्याग कर यज्ञ दान तप आदि कार्यों का करना ही त्याग का अर्थ है। शुभ कर्मों को असंग और निष्काम करने की आज्ञा स्वयं प्रभु ने दी है तो विधि निषेध कर्मों का त्याग स्वतः सिद्ध हो गया कि कर्म करना भी तो असंग और निष्काम करना यही त्याज्य है।

(२) कौन से कर्म त्याज्य और कौन २ कर्तव्य है इस झगड़े में हरि शरणागत को पड़ने की आवश्यकता ही क्या रही जो तो आत्म निवेदन कर चुका तो जो कृत्य होंगे भगवत् प्रेरित और तन्निमित्त ही होंगे।

आश्रित जन तो जो कुछ करेगा भगवत् के अर्पण करके और तदर्थ ही करेगा उसका स्वत्व तो शरीर ही क्या आत्मा तक में नहीं रहा।

बस महावाक्यों में निज दास के लक्षण जो बताये गये उसका विवरण हो चुका।

शेष आगे

कवित्तः—

[ले० श्री पं० शिवलहरी जी]

वारन की वारना वान के बराबर कीन्ही ,
वार काहे मेरी बार कीन्ही बनवारी है।
कूल-कूलन बढ़ायो इन्द्रमान को घटायो ,
गिरि कर पै उठायो याते नाम गिरधारी है॥
एक गीध तारि करि-गीध गये दीनानाथ ,
तारिबो कठिन मेरो पाप बोझ भारी है।
नामतो रट्यो है पल आधहू न तेरो 'लहरी',
जाहि के प्रभाव तरे सिन्धु शैल भारी है॥

दम

(ले० श्री महात्मा राम)

दमं निःश्रेय से प्राहु वृद्धा निश्चय दर्शिनः।
ब्राह्मणस्य विशेषेण, दमो धर्मः सनातनः॥

वेदों के अर्थ को जानने वाले महर्षियों ने अनेक प्रकार से धर्म की व्याख्या करते हुवे, 'दम' को ही परं श्रेष्ट धर्म माना है और दम ही मनुष्यों के कल्याण का साधन कहा है। ब्रह्म को जानने की इच्छा वाले जिज्ञासु को तो विशेष करके दम ही कल्याण करने वाला है। इस दम को सनातन धर्म भी कहते हैं। दम को धारण करने वाले पुरुष का तेज बढ़ता है, दम से पुरुष पाप रहित हो जाता है और दम से पवित्र हुवा पुरुष परंब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। दम के प्रभाव से इस लोक के तथा परलोक के सुखों को भी प्राप्त कर लेता है। गृहस्थादि चारों आश्रमों में दम ही उत्तम व्रत कहलाता है। दम का मुख्य अर्थ तो इन्द्रियों को विषयों से रोकना ही है परन्तु महाभारत में दम की विशेष

करके व्याख्या की है वह इस प्रकार है।

क्षमा धृतिरहिंसा च, समता सत्यमार्जवम्।
इन्द्रियाभिजयोदार्क्ष्यं, मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
अकार्पण्यमसंरम्भः, सन्तोषः प्रिय वादिता।
अविहिंसानसूया चाप्येषां समुदयो दमः॥

दम को धारण करने वाले पुरुषों के निम्न लिखित लक्षण होते हैं क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्य भाषण, सरलता, इन्द्रियों का जय, चतुरता, कोमलता, लज्जा, अचंचलता, उदारता, शान्ति, संतोष, प्रिय भाषण, परोपकारीपना, दूसरों के गुणों में दोष न निकालना। इन सब गुणों के समुदाय को दम कहते हैं। जिस पुरुष में इन लक्षणों वाला दम रहता है वह पुरुष गुरु की पूजा करता है तथा सब प्राणियों पर दया करता है। और वह पुरुष मिथ्याभाषण, चुगली, किसी की निन्दा, स्तुति, क्रोध, लोभ, मोह, दर्प, स्तब्ध-अक्खड़पना, वाचालता, राग, द्वेष, ईर्षा और किसी का अपमान इन बातों को सेवन नहीं करता। इन्द्रियों को दमन करने वाला पुरुष नाशवान पदार्थों की कभी इच्छा नहीं करता। वह सदा सन्तुष्ट रहता है जैसे समुद्र सदा स्थिर रहता है। जो पुरुष इस प्रकार प्राणीमात्र से मित्रभाव रखता है, तथा सद्गुण ग्राहक होता है मन से सदा प्रसन्न रहता है और जो आत्मा के स्वरूप को जानता है वह संसार के अनेक संगों से मुक्त रहता है। उसको लोक परलोक में महान सुख मिलता है ऐसा ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों को जीतने वाला गृह को त्याग कर आरण्य वन में जाकर देह पात होने के समय की बाट देखता हुआ वन में विहार करता है और देह पात होने के बाद ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होता है।

जिससे प्राणी भयभीत होते हैं और जो सर्व प्राणियों से भयभीत होता है ऐसे देश से युक्त हुवे पुरुष को कहीं भी भय नहीं व्यापता। सर्व प्राणियों में ब्रह्म की भावना करे जैसे आकाश में उड़ने वाले पक्षी और जल में फिरने वाले जलचरों की गति देखने में नहीं आती ऐसे ही ज्ञानी पुरुष की गति (देवयान मार्ग से वा पितृयान मार्ग से) देखने में नहीं आती है।

युधिष्ठिर के प्रति भीष्म पितामह कहते हैं कि हे राजन! जो पुरुष घर और घर के सम्बन्धियों को त्याग कर मोक्ष के लिये उद्योग करता है उसको सदा के लिये तेजोमय लोक प्राप्त होता है। जो पुरुष सर्व कर्मों का विधि पूर्वक संन्यास (त्याग) करता है तथा भान्ति २ की विद्यायें और अनेक पदार्थों का त्याग करता है अर्थात् मनुष्य की जिन २ पदार्थों में अधिक प्रीति होती है उन सर्व पदार्थों को त्याग देता है वह सत्य कामना वाला होता है। सर्वत्र इच्छा पूर्वक आचरण करता है। और वह जगत् की सर्व कामनाओं का त्यागी बनता है वह पुरुष इस लोक में सत्कार पाकर स्वर्ग को जाता है जो पितामह ब्रह्मा जी का स्थान है जो स्थान वेद में कहे हुए तप से मिल सकता है। जो बुद्धि रूपी गुहा में नित्य छुपी रीति से रहता है वह मुक्ति का स्थान एक मात्र दम से ही प्राप्त होता है।

ज्ञान स्वरूप आत्मा में आराम करने वाले ज्ञानी को तथा सर्व भूत प्राणियों से विरोध न रखने वाले पुरुष को फिर जन्म लेने का भय नहीं रहता है तो फिर परलोक का भय तो किस प्रकार रहेगा। जिस दम की ऊपर कथन किया है वह दम सर्व गुणों से सम्पन्न है, परन्तु इसमें एक ही दोष है वह ये ही कि 'दम' वाले पुरुष को लोग असक्त अर्थात् शक्ति हीन कहते हैं। यह एक दोष है और

गुण अनन्त हैं। दम से परं सुख का लाभ होता है दम से सहायता सुलभ हो जाती है। दम वाले पुरुष को बन में जाने से क्या प्रयोजन है और दम रहित पुरुष को भी बन में क्या लाभ हो सक्ता है। दमन शील पुरुष चाहे बन में रहै चाहे ग्रह में वह सब जगह रहता हुआ भी सर्व विकारों से अलग रहता है।

तुलसी कृत रामायण का आकाशवाणी प्रकरण

(ले० श्री महावीर प्रसाद जी 'बजरंग बली' श्रीवास्तव)

यद्यपि अवतार हेतु प्रकरण से यह बिलकुल स्पष्ट होजाता है कि श्रीराम चरित मानस में वर्णित श्रीराम चरित उसी अवतार का चरित्र है, जिस का मुख्य हेतु मनु शतरूपा का वरदान है, और जिसमें भानुप्रताप रावण हुये हैं। पर तो भी कुछ प्रसंगों से संभ्रम में पड़ जाने के कारण प्रायः टीकाकारों तथा रामायणी महानुभावों ने विवश होकर मानस रामायण गत रामावतार चरित्र में कई कल्प की कथाओं के मिश्रित हं ने की कल्पना करली है। अत संभ्रम में डालने वाले प्रसंगों में से सब से मुख्य आकाश वाणी का प्रसंग है उस प्रसंग की निम्न लिखित तीन चौपाइयों से लोग बहुत भ्रम में पड़ जाते हैं।

१—कश्यप अदिति महा तप कीन्हा।
तिन कहं मैं पूरब वर दीन्हा॥
२—ते दशरथ कौशल्या रूपा।
कोशल पुरी प्रगट नर भूपा॥
३—नारद वचन सत्य सब करिहौं।
परा शक्ति समेत अवतरिहौं॥

उपरोक्त पहली दो चौपाइयों का अर्थ साधारण रीति पर लोग इस प्रकार करते हैं। 'कश्यप अदिति ने बहुत बड़ी तपस्या की थी उनको मैंने पूर्वकाल में वर दिया है वे ही कश्यप अदिति दशरथ कौशल्या रूप से अर्थात् राजा होकर प्रगट हैं'। अब इस अर्थ से पूर्वापर विरोध स्पष्ट ही है। क्योंकि अवतार हेतु प्रसंग में 'जौन कीन्ह जो तेही अवतारा, सो सब कहि हौं मति अनुसारा' के अनुसार मानस की कथा, उस अवतार की है जिसमें मनु शतरूपा-दशरथ कौशल्या हुये हैं और यहां आकश वाणी से कश्यप अदिति का दशरथ कौशल्या होना पाया जाता है।

ऐसे ही तीसरी चौपाई में नारद वचन को सत्य करने की भी बात आजाती है, तो अवतार हेतु प्रकरण से बिलकुल दूसरे कल्प की बात है। अतएव इस प्रसंग को ठीक २ समझने की बड़ी आवश्यकता है। इस संबंध में भगवत्कृपा से पास अपने विचारों को प्रगट करने से पहले वर्तमान काल के रामायणी महानुभावों में प्रचलित भिन्न २ मतों पर कुछ विचार करना उचित जान पड़ता है। वर्तमान काल के वक्ताओं व टीकाकारों में विशेष रूप से प्रचलित एक मत इस प्रकार है कि 'मानस के रामावतार चरित्र में जहां तहां कल्पांतर के चरित्र मिले हुये हैं। इस तरह मानस रामायण में वर्णित श्रीरामावतार कथा चार कल्पों की मिश्रित

कथा है। इसीलिये चरित्र के आरंभ में आकाशवाणी में भी चारों कल्प के अवतारों की आकाश वाणी का संकेत किया गया है और वह संकेत इस प्रकार से है 'अंसन सहित मनुज अवतारा, लेहीं दिनकर बंस उदारा।' से मनुशत रूपा के वरदान वाले परात्पर प्रभु के अवतार का संकेत है क्योंकि यह चौपाई मनुशतरूपा को दिये हुये वरदान की चौपाई, 'अंशन सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भक्त सुख दाता' से बहुत मेल खाती है। दोनों चौपाइयां बिल्कुल एकसी हैं। इससे ध्वनि से आकाशवाणी की उपरोक्त चौपाई से मनुशतरूपा के वरदान वाले परात्पर प्रभु के अवतार का ही संकेत है। और आगे का "कश्यप अदिति महा तप कीन्हा, तिन कहँ मैं पूरब वर दीन्हा। ते दशरथ कौशल्या रूपा, कोशल पुरी प्रकट नर भूपा॥ तिन के गृह अवतरिहौं जाई, रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई" इन तीन चौपाइयों से जय विजय और जलंधर वाली दोनों कल्प की आकाश वाणी का संकेत है, क्योंकि चतुर्भुज वैकुंठनाथ के अवतार में ही कश्यप अदिति का दशरथ कौशल्या होना मानस के अवतार हेतु प्रकरण में पाया जाता है यथा:–

कश्यप अदिति तहां पितु माता।

दशरथ कौशल्या विख्याता॥

ऐसे ही 'नारद वचन सत्य सब करिहौं, परा शक्ति समेत अवतरिहौं।' से नारद शाप वाले क्षीराब्धि शायी भगवान् के अवतार की आकाशवाणी का संकेत है।

अब इस कथन पर विचार करते हैं इस अवसर पर इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि जब अवतार हेतु प्रकरण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मानस रामायण में मनुशतरूपा के कारण से अवतीर्ण होने वाले कल्प का ही चरित्र कथन किया गया है, तो फिर उसमें अन्य कल्प की कथाओं के मिश्रित होने की कल्पना करने का अवसर ही कहां रहा? फिर यदि किसी प्रकार चार कल्प की कथाओं का मिश्रित होना स्वीकार ही करलिया जाय, तो चरित्र का कौन सा अंश किस कल्प का है? इस प्रकार मानस कथित रामावतार चरित्र का विभाग करके पुनः आकाश वाणी के वाक्यों से मेल करके ठीक उतरने पर ही उक्त कथन की पुष्टि हो सकेगी। अन्यथा विचार शक्ति को काम में न लाकर अंध विश्वासियों की तरह किसी तरह मनको समझा लेने की तो बात ही दूसरी है। पर आजतक वक्ता या किसी टीकाकारने इस प्रकार कल्प के क्रम से सातों कांड के चरित्र का विभाग कर दिखाने का साहस नहीं किया। और कोई साहस करता भी कैसे? क्योंकि यथार्थ में इस प्रकार का विभाग हो ही नहीं सकता। चार कल्प की कथाओं को मिश्रित होने की बात, केवल किसी प्रकार मन को समझा लेने के लिये ही है। अतएव आकाश वाणी में भी चार कल्प की आकाश वाणी का संकेत होने की कल्पना भी व्यर्थ है। वास्तव में जिस अवतार की कथा है आकाश वाणी भी उसी एक अवतार अर्थात् मनुशतरूपा के वरदान से अवतीर्ण होने वाले कल्प की ही है। किसी २ महानुभाव के मत में मानस के राम चरित में कई कल्प की कथाओं का मिश्रित होना तो नहीं सिद्ध होता पर आकाशवाणी की चौपाइयों का समन्वय करने में वे महानुभाव जिज्ञासुओं का इस प्रकार संतोष करदेते हैं कि आकाशवाणी में चार, चार 'अवतरिहौं' का शब्द देकर संकेत से पूर्व कल्पों के अवतार हेतुओं की सूची देदी गई है। चौपाइयों का भिन्न २ कल्पों से संबंध वे भी ऊपर कहे हुए मत के अनुसार ही लगाते हैं। पर विचार करने पर यह

समाधान भी कुछ ठीक नहीं जचता। कारण कि रावण के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी तथा देवताओं की रक्षा के अर्थ ब्रह्माजी ने स्तुति की। उस प्रार्थना पर उनके शोक व सन्देह को दूर करने के लिये आकाशवाणी हुई। अब उस आकाशवाणी में पृथ्वी तथा देवताओं की रक्षार्थ, आगे जो कुछ करना है उस विषय में ही, अर्थात् आगामी अवतार के विषय में ही सब कुछ कहना संभव होगा। बिना प्रयोजन ही पुराने कल्पों के अवतारों की भी नहीं, किन्तु उससे भी पूर्व, उनके हेतुओं की सूची देवताओं को सुनाना कुछ संगत नहीं जान पड़ता। फिर भी किसी तरह यह बात स्वीकार भी करली जाय, तो पूर्व कल्पों के संबंध में कहे हुये वाक्यों के साथ, 'अवतार लिया था' इस प्रकार भूत काल की क्रिया आनी चाहिये। 'अवतरिहीं' का प्रयोग तो भविष्य काल के लिये ही हो सकता है।

कोई २ महानुभाव इस प्रकार अनुमान करते हैं कि मानस में तप करना मनुशतरूपा का ही मिलता है कश्यप अदिति का तप करना मानस में कहीं नहीं पाया जाता। अतएव अनुमान करना होगा कि मनुशतरूपा ही पूर्वजन्म में कश्यप अदिति थे अतएव आकाश वाणी में मनुशतरूपा को ही पूर्व जन्म के कश्यप अदिति नाम से संकेत किया गया है। ऐसे ही 'नारद वचन सत्य सब करिहौं' के बारे में इस महानुभाव का अनुमान है इस प्रकार है कि 'नारद शाप वाले अवतार हेतु में नारद शाप दो हैं १—नारद जी का भगवान को शाप। २—नारद जी का हर गणों को शाप। पर प्रथम क्रोध की दशा में भगवान को दिये हुये शाप के लिये तो नारद जी ने मिथ्या हो जाने की ही इच्छा प्रगट की थी, 'मृषा होउ मम श्राप कृपाला' अतएव उस हेतु से अवतार होना आवश्यक नहीं है। तात्पर्य्य यह है कि हर गणों का शाप ही इस अवतार का मुख्य कारण है। पर उस कल्प में पृथक् मनु शतरूपा के वरदान से दूसरे कल्प में अवतार होकर इस कल्प के चरित्र के साथ साथ भगवान ने अपनी इच्छा से अपने लिये कहे हुये नारद जी के वचनों को सत्य करना भी निश्चय कर लिया। इसी से इस अवतार की आकाशवाणी में 'नारद वचन सत्य सब करिहौं' कहा गया है। प्रथम लिखे हुये दोनों मतों की अपेक्षा यह अनुमान (पूर्वापर विचार की दृष्टि से) सराहनीय है। पर त्रुटि इस अनुमान में यह है कि मानस रामायण को 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' होने की सूचना मानस रामायण से ही स्पष्ट रूप से मिलने पर अन्य आर्ष ग्रन्थों की उपेक्षा करके केवल मानस रामायण के आधार पर बिल्कुल स्वतंत्र अनुमान किया गया है। और ऐसा होने से अनुमान का व्यर्थ होजाना भी संभव है। उक्त अनुमान में भी यह बात हुई है।

कश्यप अदिति का स्वतंत्र इतिहास तथा उनका तप करना अन्य आर्ष ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से पाया जाता है; इतना ही नहीं, किन्तु श्रीमद् भागवत के देखने से मनुशतरूपा व कश्यप अदिति लगभग समकालीन ही सिद्ध होते हैं। तब बिना किसी आधार के इतना क्लिष्ट अनुमान करलेना, कि मनुशतरूपा ही पूर्व जन्म में कश्यप अदिति थे यह कहाँ तक ठीक हो सकता है। श्री मद् भागवत तृतीय स्कंध के देखने से स्पष्ट है कि सृष्टि के आदि काल में ब्रह्मा जी से ही स्वायंभु मनु व शतरूपा की उत्पत्ति है और लग भग उसी समय मनुशतरूपा से पूर्व ही ब्रह्माजी ने दश पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष नारद उत्पन्न किये। जिनमें से मरीचि के पुत्र ही कश्यप हैं। कश्यप के पुत्र ही हिरण्याक्ष व

हिरण्यकशिपु प्रसिद्ध हैं, जो दिति के गर्भ से उत्पन्न हुये हैं। जब समय ब्रह्मा जी ने स्वायंभुव मनु को सृष्टि करने का आदेश दिया तब स्वायंभुव मनु ने प्रजा के रहने के लिये पृथ्वी मगाने के लिये विधाता से अनुरोध किया, जो कि उस समय कश्यप के पुत्र हिरण्याक्ष के हाथ में रसातल में थी। उसी समय भगवान वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष को मार पृथ्वी को रसातल से ले आये। यह बात स्वायंभुव मनु के अनुरोध से हुई थी। उससे पीछे वामनावतार के संबंध में भी कश्यप अदिति का इतिहास आर्ष ग्रंथों में पाया जाता है। इस तरह से मनु-शतरूपा और कश्यप अदिति सब कालांतर ही सिद्ध होते हैं। जिन्होंने तुलसी कृत रामायण को छोड़ दूसरे श्रीमद् भागवतादि आर्ष ग्रंथों का अवलोकन ही नहीं किया, उन की श्रद्धा भले ही उपरोक्त अनुमान पर जम जाय पर जिन्होंने श्रीमद् भागवतादि आर्ष ग्रन्थों का अवलोकन किया है उनके लिये तो उक्त अनुमान किसी प्रकार संतोषप्रद नहीं हो सकता।

'नारद वचन सत्य सब करिहौं' के संबंध में भी जो कुछ अनुमान किया गया है, वह प्रसंग के अनुकूल नहीं है। अवतार हेतु प्रकरण में 'नारद शाप दीन्ह एक बारा। कल्प एक तेहि लगि अवतारा' ये शिव जी के शब्द ही पार्वती जी के प्रति ऐसे हैं कि जिनके सुनते ही पाठक का हृदय 'किस को शाप दिया था? भगवान को, तत्काल यही समझेगा उक्त चौपाई से ' किसको शाप दिया था? हर गणों को' ऐसा कभी भी मनमें नहीं आवेगा। और ऐसा ही हुआ भी। 'नारद शाप दीन्ह एक बारा, कल्प एक तेहि लगि अवतारा।' इतना शिव जी के मुख से सुनते ही पार्वती जी तुरंत आश्चर्य में होकर बोल ही तो उठी। कारण कवन शाप मुनि दीन्हा। का अपराध रमा पति कीन्हा॥ 'हरगणों' की ओर उनका स्वप्न में भी मन नहीं गया। क्योंकि शिवजी के वचनों में हरगणों की शाप का कोई संबंध ही नहीं था। इस प्रकार उस कल्प के अवतार का मुख्य हेतु नारद जी का भगवान को शाप ही है। हरगणों का शाप मुख्य कारण नहीं है। अतएव भगवान का कौथा प्रकथा में अपने लिये कहे हुये नारद जी के वचनों अर्थात शाप को सत्य करना उस कल्प के अवतार से पृथक नहीं किया जा सकता। इस प्रकार आकाश वाणी के प्रसंग में उपरोक्त तीनों ही मतों से यथार्थ सन्तोष नहीं होता।

भगवत्कृपा से इस आकाश वाणी के संबंध में कुछ गंभीर रहस्य दास की समझ में आया है, जिस को समझ लेने से इस प्रसंग का यथावत् समन्वय होकर संदेहों की निवृत्ति हो जाती है। और मानस के पूर्वापर प्रसंग में भी कोई विपर्यय नहीं पड़ता। अतएव भगवत्कृपा से प्राप्त विचारों को सज्जनों की सेवा में उपस्थित किया जाता है, प्रसंग बहुत गूढ़ है, अतएव पाठक वृन्द बहुत सावधानी से अवलोकन करें, यह नम्र निवेदन है। प्रथम प्रसंग की चौपाइयां लिख कर तब अर्थ का स्पष्टीकरण किया जाता है।

दोहा—जानि सभय सुर भूमि सुनि, वचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरणि सोक सन्देह॥

चौ॰—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुमहि लागि धरिहौं नरवेसा॥
अंसन सहित मनुज अवतारा।
लेहौं दिनकर बंस उदारा॥
कश्यप अदिति महा तप कीन्हा।
तिन कहँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा।
कोसल पुरी प्रगट नर भूपा॥

तिन के गृह अवतरिहौं जाई ।
रघुकुल तिलक सो चारहु भाई ॥
नारद बचन सत्य सब करिहौं ।
परम शक्ति समेत अवतरिहौं ॥
हरिहौं सकल भूमि गरुआई ।
निर्भय होहु देव समुदाई ॥

१. प्रथम दोहे में 'गंभीर शब्द' दिया गया है इस से स्पष्ट है कि आकाशवाणी का तात्पर्य्य समझने के लिये गंभीर बुद्धि से काम लेना होगा। साधारण रीति पर शब्दार्थ कर देने मात्र से आकाशवाणी का यथार्थ अभिप्राय समझ में नहीं आयेगा इसी से पूज्य पाद गोस्वामी जी ने प्रथम ही 'गंभीर' शब्द दे दिया है।

२. 'हरषि शोक सन्देह' ये शब्द भी दोहे के अन्तर्गत बहुत ध्यान देने योग्य हैं, इन शब्दों को देकर पूज्यपाद गोस्वामी जी ने यह सूचित किया है, कि आकाशवाणी में जो कुछ कहा गया है, उस का मूल उद्देश्य 'पृथ्वी तथा देवताओं के शोक व सन्देह को दूर कर देना ही है। तात्पर्य्य यह कि आकाशवाणी के जिस अर्थ से देवताओं के शोक व सन्देह की निवृत्ति होना ही सिद्ध हो, वही आकाश वाणी का ठीक तात्पर्य्यार्थ हो सकेगा विपरीत इसके जिस अर्थ में एक शब्द भी देवताओं के शोक व संदेह के हरण में अनुकूल न होकर बाधक सिद्ध होगा, वह अर्थ किसी प्रकार आकाश वाणी के प्रसंग में ग्राह्य न होगा। पहली चौपाई में 'जनि डरपहु' तथा 'तुम्हहि लागि धरिहौं नर वेषा' ये दोनों वाक्य देवताओं के शोक हरणार्थ हुये, पर इतना ही कह कर चुप रहने से देवताओं के मनमें एक प्रकार का सन्देह रह जाने की संभावना है वह यह कि, 'प्रभो! हमारे लिये आप नर वेष धारण करेंगे, यह तो माना, पर वामन, परशुराम आदि अंशावतारों के समान आंशिक शक्ति से ही अवतार लेनेपर तो वर्तमान काल की आसुरी संपत्ति का परास्त होना कठिन है, त्रिदेव गत विष्णु की शक्ति भी राक्षसेंद्र रावण को परास्त करने में असमर्थ सी हो रही है, (जैसा कि गृधराज के विषय में अनुमान करते हुये आरण्य कांडान्तर्गत, 'कि मैनाक कि खग पति होई। मम बल जान सहित पति सोई' इसप्रकार रावण के वाक्यों से स्पष्ट है) अतएव देवताओं के अन्तःकरण में इस प्रकार के सन्देह की संभावना की निवृत्ति के लिये आकाश वाणी की दूसरी चौपाई है, तात्पर्य्य यह कि 'आंशिक शक्ति से नहीं, किन्तु उदार सूर्य वंश में अंशों के सहित पूर्णावतार लूंगा सूर्य्यवंश का नाम लेकर सूर्य वंशी क्षत्रिय कुल में अवतीर्ण होऊंगा। जहां कि तुम्हारी रक्षा करना मेरा स्वाभाविक धर्म होगा। गो ब्राह्मण तथा दैवी संपत्ति की वृद्धि तथा रक्षा करना क्षत्रियों का स्वाभाविक धर्म है, फिर उदार सूर्य वंश के लिये क्या कहना?

इस प्रकार यह देवताओं के लिये भगवान का वचन विशेष, संतोष जनक हुआ, पर फिर भी देवताओं को यह विकलता हो सकती है, कि 'प्रभो! अवतार तो लेंगे। और अंशों के सहित पूर्णावतार लेंगे। यह भी विदित हुआ, पर हम नित्य ही दुष्टों के अत्याचार से अत्यंत पीड़ित हो रहे हैं। प्रभो आप को अवतार लेने में विलंब कितना है? कब तक हम सब देवता तथा पृथ्वी इस विपत्ति को सहन करते हुये आप के अवतार लेने की प्रतीक्षा करें। अतएव इस विकलता की निवृत्ति के लिये भगवान को यह भी सूचित करने की आवश्यकता हुई कि 'श्री रामावतार के नरनाट्य की भूमिका को सूचित करने वाला, नाटक का पहिला दृश्य अयोध्या रूपी नाट्य शाला में खुल चुका है,

अर्थात् दशरथ कौशल्या रूप नर भूप, जिनके घरमें ही कला २ अंश रामावतार हुआ करता है, वे अयोध्या में प्रगट हैं, केवल इस श्री रामावतार के नाटय का प्रारंभ होने, अर्थात् अवतार लेने मात्र की ही देर है।

अब यहां पर विशेष ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक कला के श्री रामावतार में दशरथ कौशल्या ही भगवान श्रीराम के माता पिता हुआ करते हैं, यह श्री रामावतार की लीला, नाटय का, एक आवश्यक अंग है। पर प्रत्येक कला में दशरथ कौशल्या का पार्ट लेने वाले व्यक्ति तो एक ही हों यह आवश्यक नहीं है। तात्पर्य यह है कि दशरथ कौशल्या का पार्ट लेने वाले व्यक्ति कला भेद से भिन्न २ हो सकते हैं।

अब मानस कथित श्री रामावतार चरित में मनुशतरूपा ही दशरथ कौशल्या हुये हैं। क्योंकि उनका वरदान ही इस अवतार का मुख्य कारण है, इसबात को लेख के प्रारंभ में ही स्पष्ट करदिया है। पर तो भी आकाश वाणी में मनुशतरूपा की कोई चर्चा न कर उनसे सर्वथा पृथक् कश्यप अदिति के तरफ़ी ओर संकेत किया जाता है यही बहुत बड़ी शंका है, और इसीसे अर्थ करने में लोग बहुत संभ्रम में पड़ जाते हैं। पर यहां पर आकाश वाणी का बहुत गूढ़ अभिप्राय है 'कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन कह मैं पुरुब बर दीन्हा॥' में 'पुरुब बर दीन्हा' का अर्थ प्रायः लोग यही समझते हैं, कि 'भगवान का यह कहना है कि कश्यप अदिति ने पूर्वकाल में तप किया था, उनको मैंने 'उनके पुत्र होने' का वर दिया था, और आगे की चौपाई 'से दशरथ कौशल्या रूपा। कौशलपुरी प्रगट नर भूपा॥' से 'वेही कश्यप अदिति दशरथ कौशल्या रूप से कौशल पुरी में प्रकट हैं' ऐसा ही अर्थ उक्त दोनों चौपाइयों का मानस रामायण के वक्ताओं में प्रचलित है। पर ऐसा अर्थ होने से पूर्वापर का स्पष्ट विरोध पड़ता है, क्योंकि अवतार हेतु प्रकरण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मानस रामायण के अवतार चरित में दशरथ कौशल्या, मनुशतरूपा हुये हैं, मनुशतरूपा का वरदान ही इस अवतार का मुख्य कारण है। इस अवतार के चरित्र का ही मानस रामायण में कथन किया गया है। यथा—

अपर हेतु सुन सैल कुमारी।
कहौं बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारण अज अगुन अरूपा।
ब्रह्म भयेउ कोसल पुर भूपा॥
जो प्रभु बिपन फिरत तुम देखा।
बंधु समेत धरे मुनि बेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी।
सती सरीर रहिउ बौरानी॥
अजहुं न छाया मिटत तुम्हारी।
तासु चरित सुनु भ्रमहर हारी॥
लीला कीन्ह जो तेहि अवतारा।
सो सब कहिहौं मति अनुसारा॥

इस अवतार हेतु में ही आगे मनुशतरूपा के तप व वरदान का प्रसंग है।

इस प्रकार जब अवतार हेतु प्रकरण से इस अवतार में मनुशतरूपा का ही दशरथ कौशल्या होना स्पष्ट है, तब आकाश वाणी में कश्यप अदिति दशरथ कौशल्या होना कैसे कहेंगे? यह पूर्वापर का स्पष्ट विरोध है। अब यहां पर आकाश वाणी के अभिप्राय को समझने के लिये मनुशतरूपा व कश्यप अदिति दोनों महानआत्माओं के तप व वरदान में क्या अंतर है। इस बात पर ध्यान देना विशेष आवश्यक है मनुशतरूपा का तप व वरदान तो मानस रामायण में स्पष्ट ही है, कश्यप अदिति के

तात व व्याख्यान के लिये श्रीवाल्मीकि रामायण के बाल काण्ड का सत्तावनवाँ सर्ग देखना चाहिये। वह प्रसंग श्लोक संख्या सहित अगले अंक में।

कामना

(दुमिला माधवी छन्द)

(रचयिता श्रीमती ब्रज कुमारी "प्रभाकर" आश्रम)

जब श्याम कहै पुनि आन नहीं।
　　तहँ पारस पीरस पीर हरैं ॥ १ ॥
जब काम दहै मुनि मान नहीं।
　　तहँ नीरज नीरज नीर हरैं ॥ २ ॥
जब श्याम अहै ! सुनि कान नहीं।
　　तहँ कीरस कीरस कीर सरैं ॥ ३ ॥
जब काम चहै मुनि पान नहीं।
　　तहँ बीर-ज-भी-ब्रज बीर वरैं ॥ ४ ॥

उसकी खोज

[ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम]

जिस सर्वशक्तिमान् सुखनिधान भगवान् की विचित्र सृष्टि में असंख्यों प्राणी क्षणमात्र में प्रादुर्भूत होते हैं उसी प्रकार लय होते हैं क्या उन में से एक जीव जिस की उसके सामने कुछ भी हस्ती नहीं उसको पा सकता है ? उसका साक्षात्कार कर सकता है ? और यदि पा सकता है तो क्या उसको कहीं जाना पड़ता है क्योंकि बिना के प्रत्यक्ष होने पर भी उसको खोजने का क्या विचार इस विषय में वाणी जन ही प्रमाण हैं वे कहते हैं कि जीव यद्यपि ईश्वर का अंश है तथापि उसको माया के संयोग से उपाधिमान् होना पड़ा। यदि उपाधि छूट जाय तो उसमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रहता। कर्म रूप फल का भ का होने से जीव को अनेक उपाधियों ने आ घेरा। उनमें सब से बड़ी उपाधि मन है। यदि यह उपाधि मिट जाय तो इसका बेड़ा पार हो जाय। अब इस उपाधि को मिटाने का क्या उपाय होना चाहिये सो विचारने की बात है। इस उपाधि के मिटाने के अनेकों उपाय प्रचलित हैं। ज्ञान वैराग्य योग, भक्ति आदि बहुत से मार्ग हैं परन्तु इनमें सब से सरल मार्ग यदि है तो भक्ति है। भक्ति के भी लोगों ने अनेक भेद निकाल रक्खे हैं। सभी रास्ते ठीक हैं जाना सब को वहीं है। कोई चक्कर से जायगा और कोई सीधा जायगा। यदि जीव सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर एक मन से उसकी खोज में लग जाय तो इसके लिये उसका पाना सहज है परन्तु इसको जो यह माया के संग हुआ है इससे इस का मन हिलते हुये पानी की समान चंचल है। यदि स्थिरता आ जाय तो मोक्ष भी हो जाय। परन्तु स्थिरता कहाँ है ? सारा संसार चलायमान है पृथ्वी जल तेज, वायु सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र सब चंचला प्रकृति के चक्कर में घूम रहे हैं परन्तु घूमते २ भी यदि वृत्ति इस ओर लग जाय तो भी बेड़ा पार है। उसकी खोज करो, वह कौन है जिसका यह तमाशा है ? उसको जानो, वह कहाँ है ? उसमे पहचान करो यदि वह मिल गया तो जीवन सफल है। उसके लिये तीनों लोकों को खोजना होगा, सातों लोक में चौदह भुवन में उसका पता नहीं कहां है, परन्तु खोजो वह मिलेगा उसकी अप्राप्ति में निराश हो कर बैठे हुओं के कानों में यह गूंज उठती है कि खोजो।

क्या वह किसी देश विशेष से सम्बद्ध है अथवा काल की सीमा में है, या परिमाण का विषय है ? नहीं वह अपरिच्छेद्य है। उसको देश काल वस्तु परिच्छेद से कोई सम्बन्ध नहीं। उसका कुछ परिमाण नहीं। वह अप्रमेय है। परन्तु हमारी खोज तुच्छ है। इसलिये उसको किसी देश में काल में व परिमाण में बांध कर उसका भजन ध्यान व पूजन करते हैं। है भी ठीक, अन्यथा हमारी तुच्छ बुद्धि में वह इतना व्यापक ब्रह्म किस प्रकार आ सकता है। गोली का आकार छोटा होता है इसी लिये उसको सिंहादि के बड़े शरीर में किसी देश विशेष में निशाना लगाया जाता है। परन्तु वह इतने विपुल देह वाले सिंहादि को मार देती है इसी प्रकार हमारा लक्ष्य बहुत बड़ा है अतः उस को भी किसी देश विशेष में निर्धारित करके मन रूपी गोली मार कर के तुरन्त वशवर्ती किया जा सकता है। परन्तु जिस प्रकार गोली बारूद के तीव्र धक्के से रास्ते में आने वाले फूल पत्तों को चीरती बड़े वेग से जाती है और शिकार को वश में करती है, इसी प्रकार यदि प्रबल वैराग्य व दृढ़ जिज्ञासा रूप बारूद से मन रूप गोली को अत्यन्त वेग से उसकी ओर छोड़ेंगे तो ही विषय भोग रूपी फूल पत्तों को चीर कर ईश्वर रूप लक्ष्य को भेद सकेंगे। यदि बारूद कम रहा तो गोली लक्ष्य तक न पहुंच कर बीच ही में ठंडी हो जायगी। इसी तरह मन की बात समझनी चाहिये। अब रही बात यह कि हमारा लक्ष्य इतना बड़ा है जिसका कोई परिमाण नहीं तो उसके किस देश में, किस भाग में निशाना बांधना चाहिये। उसके अवयव कौन से हैं। किस भाग में लगने से जल्दी काम बनेगा। किसी के शिर में मारने से जल्दी मरता है किसी के हृदय में किसी के और कहीं, तो हम अपने लक्ष्य को कहां से बेधें यह शंका होती है तो श्रुती भगवती कहती है।

अपाणि पादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता... ... ...

न उसके हाथ हैं न पैर हैं न कर्ण हैं न चक्षु हैं और सब से टेढ़ी खीर यह है कि वह तो सब को जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जानता। तो फिर बिना जाने पिछाने किसको बेंधोगे, यह तो गड़ बड़ हुआ शिकार ही हाथों से गई, लो अच्छा एक काम करो ज्ञान वैराग्य की गोली बनाओ और मन को शिकार खेलो। यह अच्छा हुआ घर बैठे ही शिकार खेल लेंगे बाहर की परेशानी हटी परन्तु जरा संभल कर, यह न समझना कि घर में ही शिकार है क्या परवाह है। यह उससे भी टेढ़ी खीर है। इसकी गति बड़ी तीव्र है यह घर में रहता हुआ भी सारे संसार में है इसकी असीमता उससे कम नहीं। इसका निशाना भी बड़ा बारीक है। समझने पर यह उस से किसी बात में कम नहीं है। इसके हाथ पैर आदि, अवयव नहीं हैं। नहीं इसका रूप है। यह तो 'अणोरणीयान् वह महतो महीयान्' है। इसी से सोच लो बारीक (सूक्ष्म) निशाना सब से नहीं लग सकता है। यह बारीक काम है। इसमें पूरा योग साधन है जिसने यह लक्ष्य बेध दिया उसकी खोज पाली। फिर क्या है मरे हुये मन का तीर या गोली बना कर (जिस प्रकार इन्द्र ने दधीच ऋषि की अस्थियों का वज्र बना कर वृत्रासुर को मार दिया था, इसी प्रकार मन भी बड़ा कठोर होता है) बड़े लक्ष्य को बींधने में बड़ी आसानी हो जायगी। फिर तो उसके अवयव प्रगट हो जायगे श्रुति भी कह देगी कि:-

अग्निमूर्धा चक्षुषी चन्द्रौ सूर्यं।
सइव शीर्षा, ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् ॥

इत्यादि तब तो उसकी आप से आप खोज लग जायगी। तब परेशानी न होगी। इसी लिये तो कहते हैं "जितं जगत् केन मनो हि येन"। इस (मन) की चञ्चलता के बारे में भी कहते हैं:-

चलस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः।
मनोवद्ध्वा नरो बद्धं किं न सिध्यति भूतले॥

पारा और मन स्वभाव से ही चंचल होते हैं यदि ये दोनों बन्ध जांय कहीं टिक जांय तो क्या सिद्ध न हो जाय। जब इसको मार कर गोली बना लो तो फिर क्या है। सब कुछ हंसी खेल हो जाता है। इसलिये जानते हैं यही वह है जिस को चिरकाल से खोज में थे। ठीक है तभी तो श्रुति कह रही थी 'मनो ब्रह्मेत्युपासीत'। मनु-अव बोधने। अवबोधनं-ज्ञानं-इसी से तो कहा है। "बोधनस्य साधनेभ्यो हि साक्षं धर्मोक्षैकसाधनम्॥ तथाच मनसो नास्त्यगोचरम्। तो यह मन सब के पास है ही। कबीर जी ने तभी कहा है-मोको कहां ढूंढे बन्दे मैं तो तेरे पास में। यह मन किसी को अपने में प्रविष्ट करके और किसी में प्रवेश करके सर्वत्र परिपूर्ण है। सो इसी के खोज निकालने चाहियें जिससे इसका पता चले। यह ही पक्का काम है। इसने जीव की सारी सम्पत्ति चुरा कर संसार में बखेर दी। जो इसकी खोज करते २ यह कहीं मिल जाय तो बिना विचारे इसके गोली दो। बस इसी में उसकी खोज मिलेगी। यह ही उसकी खोज का सुराग बैठा है। परन्तु इसकी खोज कौन निकालेगा जो यदि किसी ने निकाल भी ली तो वह तुरन्त मिल जायगा यह कह रहा है। खोजी होय तुरत मिल जाऊं एक ही पल की तलाश में। तो फिर आओ उसकी खोज में सब मिल कर एकाग्रता से तुरन्त लग जांय। बोलो ओ३म्

चरित्र और जीवन

[ले० श्री शिवराम शर्मा ब्रह्मचारी]

१. इस मनुष्य जीवन में सब से बड़ी वस्तु जो एक साधारण से मनुष्य से लेकर एक चक्रवर्ती राजा के पास मिल सकती है और उसके जीवन को सुखमय बनाने और उसको वास्तव में मनुष्य कहलाने में विशेष कर सहायक है वह है मनुष्य का चरित्र यही मनुष्य को पशु श्रेणी से पृथक् करता है। यही मनुष्य को अवनति से उन्नति के पथ पर ले जा सकता है यथार्थ में मनुष्य को मनुष्य बना देता है।

२. यही अमूल्य वस्तु संसार के सुप्रसिद्ध नेताओं, संचालकों, समाज के सुधारकों और धार्मिक लेखकों के पास गुप्त थी और जिस समय तक उनके पास नहीं थी वह मनुष्य जाति में हीन से हीन थे। उनके विरुद्ध उन देशों के राजा तक थे। मगर उन का चरित्र अन्त में उन्हें नर श्रेष्ठ बनाता है। वाल्मीकि तुलसीदास, कबीरदास, नेपोलियन, शिवा जी, राणा प्रताप, इन सब व्यक्तियों के नाम मुख पर आने से, कहने से, सुनने से, जानने से, और अपने प्राचीन ऋषियों के स्मरण मात्र से हमारे हृदय में एक आह्लाद सा हो जाता है अनेकानेक विचार उठने लगते हैं। यह क्या अचम्भे की बात है कभी इस पर विचारा है? नहीं। जब हम सीता, सावित्री द्रौपदी या अन्य क्षत्राणियों की ओर देखते हैं तो हम घमण्ड से अपना मस्तिष्क संसार के सामने उठाते हैं। परन्तु फिर भी रहस्य को जान कर गुणा नहीं ... भाइयो उनका चरित्र था जो उनको अनित्य संसार के अन्दर नित्य कर गया। आदि ऋषियों के गीत तो हम नित्य गाते हैं मगर इन कीट समान प्राणियों को जानते भी नहीं कि जो

पश्चात के युगों में कई २ बार जन्म कर भी जिन्हों ने अपनाने योग्य अमूल्य वस्तु चरित्र को नहीं अपनाया। यह है चरित्र का फल।

३. चरित्र से हम दुनियां में जो इच्छा करें पूरी कर सकते हैं। क्योंकि वह बहुत ही अमूल्य वस्तु है जो सहायक है पैदा करता है। सद्व्यवहार, हिम्मत, उदारता, सत्यता, संयम, स्वावलम्बन, सन्यत, ज्ञान, बुद्धि आदि और अनेकानेक सद्गुण सब इसी के फल स्वरूप हैं। संसार में जिसने जो कुछ प्राप्त किया सब अपने चरित्र से, जैसे हनुमान, बाल्मीक, अन्य भक्त, सन्त और राजा लोग जैसे नोक्स ने स्काटलैंड में, डेनटस ने इटली में हरिश्चन्द्र अर्जुन अशोक, प्रताप, शिवा जी, और अन्य मनुष्यों ने जो कुछ भी इस संसार और गृहस्थ जीवन वा सन्यास जीवन को भी जिस साधारण मनुष्य ने सुखमय और यश और कीर्ति का अण्डार बनाया सब अपने चरित्रों से। सार यह कि कल्पवृक्ष इस जीवन का यदि संसार में है तो मनुष्य का अपना चरित्र है।

चरित्र अपना पुरस्कार आप है। यह हमें संसार में कुमार्ग पर चलने से रोकता है और सत्पथ पर चलाता है। अगर मनुष्य चरित्र रहित है वह अवनति पर आजाता है और उन्नति पथ से गिर जाता है और अपने यश और कीर्ति को कलंकित कर लेता है।

एक चरित्र शाली मनुष्य को ससार में दुःखों का सामना अवश्य करना होता है और वह जब इन दुःखों से पार होजाता है तब और भी अपने चरित्र में दृढ़ हो जाता है। हमारा चरित्र हमारे प्रति दिन के आये हुए दुःखों और सुखों से बनता है। सन्यास में भी यही बात है वहां योग और स्वाध्याय और ब्रह्म को जानने में ही हमारा चरित्र है। इस से यह आवश्यक हुआ कि हम किसी भी अवस्था में इस संसार में रहें हमारा चरित्र हमारे साथ सर्वदा है चाहे हम ब्रह्मचारी रहें गृहस्थी रहें, वानप्रस्थी रहें या संन्यासी रहें चाहे भक्ति करें सांसारिक कार्य करें हमारा चरित्र साथ है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि जैसा हमारा चरित्र हुआ वैसा ही हमारा स्वाध्याय होगा पठन पाठन होगा ईश्वर भक्ति होगी और सांसारिक कार्य होगा। इसे अगर हम इस संसार में सफलता की सीढ़ी कहें तो बहुत ही श्रेयस्कर होगा।

अगर हम संसार में सफल हो गये मनुष्यों की अर्थात् मनुष्य जो यश और कीर्ति के स्तम्भ हो गये हैं संसार में ऊंचा आसन ले गये हैं समाज प्रमाणिक हो गये, संयमी थे, आत्मगौरव रखते थे, ज्ञानी थे ध्यानी थे, बुद्धिमान् थे और संसार के आदर्श थे, सूची बनावें तो हमें पता चलेगा कि उनकी सफलता का कारण उनका चरित्र था। जिस समय तक किसी मनुष्य का चरित्र अच्छा है उसे शैतान जीत नहीं सकता और जिस जाति का चरित्र ऐसा ही है वह भी अजय है। और जब उसका चरित्र गया संसार की कोई वस्तु उसे नाश से नहीं बचा सकती क्या धन, क्या यश, क्या ज्ञान क्या ध्यान। संसार का साहित्य और विशेष कर इतिहास इस का पुष्ट कर्ता प्रमाण है।

किसी जाति का मूल्य, किसी मनुष्य का मूल्य अनेक धन वैभव से नहीं परन्तु वह स्वयं क्या है। जिस समय मनुष्य पृथ्वी से अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है और दूसरे लोक में पहुंचता है वहाँ भी और यहां भी अपने चरित्रों के अनुसार ही व्यवहार पाता है अगर अच्छा चरित्र रहा है तो यहां सुख और यहाँ यश और अगर बुरे चरित्र

रहे हैं तो वहां दुःख और यहां अपयश है। चरित्र हमारा दोनों लोक में सर्वोत्तम संगी है।

वह हमें शान्ति प्रदान करता है आन्तरिक तृप्ति, जिसके बिना सच्चा सुख प्राप्त नहीं, दान करता है। क्योंकि जिस समय मनुष्य धर्म कार्य करता है उसका चित्त स्वयं अन्दर से प्रसन्न होता है और उसे एक प्रकार का ऐसा आनन्द प्राप्त होता है जो कभी किसी वस्तु प्राप्त होने से नहीं हो सकता है वह प्रत्येक समय अपने चित्त का गौरव युक्त शासक है. हृदय उसका राज है और सत्यता जो चरित्र का मुख्य अंग है उससे संचालन करता है इसी से वह ज्ञानी, बुद्धिमान् और मनुष्य जाति का पूजनीय है। जैसा कालीदास ने भी कहा:-

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥

वह दूसरे के अगुआ हैं और सुधारक हैं और स्वयं स्वतंत्र हैं अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने वाला है। परन्तु ध्येय कर।

चरित्र दिखाता है कि हमारा स्वकीय गुण, एकान्त, जीवन किस प्रकार का है समाज में हमारा क्या प्रभाव, दूसरों के हृदय में हमारा आदर है या नहीं, हमारे माता पिता क्या हैं या क्या थे अपना वंश कैसा है अपना देश (अगर दूसरे देश में हों) क्या है तत्व यह कि इस संसार में हम क्या हैं इस की कसौटि हमारा चरित्र है। सत्य है कि हमारे इस जीवन का ताज और उसके साथ हमारा यश हमारा चरित्र है।

यदि कोई व्यक्ति कहे कि यह सर्व साधारण नहीं थे जो यश पाये, आदर्श बन गये खूब पढ़े लिखे थे इसी से इनमें सभ्यता थी विचार शक्ति अधिक थी और यश और अपयश के व्यवहारों को ज्ञान की तुला में बुद्धि के बट्टों से तोल लेते थे। माना "कि २ न साधयति कल्पलतेव विद्या" ठीक है मगर कबीरदास ने कहां शिक्षा पाई थी शिवा जी ने कौन सी साहित्यक पुस्तकें पढ़ी थीं। बाल्मीक ने किस गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा पाई थी। मगर उनका चित्त ऐसा संस्कृत था कि एक ही बात से चरित्र ने पलटा खाया और संसार के लिये आदर्श बन गये। यदि ऐसी अवस्था में वीणा धारणी सरस्वती विद्या ऐसे महान पुरुषों का आश्रय लेती है तो स्वयं भी कृतार्थ हो जाती है और उसे भी कृतार्थ कर देती है जिससे संसार उसके मनुष्य भावों, और आदर्शों को जो वह लिख जाता है देखें पढ़ें और गुणें और स्वयं वैसा बनने का उद्यम करें।

अब यह देखना है कि जो वस्तु ऐसी उपयोगी है अमृत सी है और साथ ही साथ विष का लेप भी एक ओर है अर्थात् दुःख (बाद में) और जिसके दूसरी ओर अफीम है जो जीवन को यथार्थ सतपथ से भुला कर, क्योंकि मनुष्य की अवस्था नशे में ऐसा ही होती है कि कुछ का कुछ बकता है कहीं का कहीं जाता है संसार में कुमार्ग पर चला और अपयश का भागी बना सकती है, उसका आविर्भाव कैसे हुआ होता आया और होता रहेगा। और ऊपर की भूमिका के अतिरिक्त और क्या हानि लाभ संसार में जीवन और पश्चात् अलौक में हो सकते हैं।

अपूर्ण

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

६६८. पूर्ण ज्ञान का दूसरा नाम प्रेम है. इसी प्रकार पूर्ण प्रेम का दूसरा रूप ज्ञान है।

६६९. जो सत्यवादी है, दयालु और उदार है, जिसमें क्षमा और शान्ति है, जो लालच, भय और क्रोध रहित है, जो सरल और प्रेमी है वही वास्तव में परमात्मा का रूप है, वही ब्राह्मण है। जो मनुष्य इन गुणों से रहित है वही शूद्र है।

६७०. एक झूठ को दूसरे झूठ से छुपाया जाता है फिर उसके लिए कितने ही और झूठ बोलने पड़ते हैं। इसी प्रकार एक पाप को छुपाने के लिए कितने ही और पाप करने पड़ते हैं। अच्छा और बुरा दोनों कर्मों का फल अवश्य होता है। जो शुद्धात्मा बिना फल की इच्छा के उत्तम कर्म करता है वह ही ब्रह्म ज्ञानी व जीवन्मुक्त हो जाता है।

६७१. निराशा और सफलता जीवन में अचानक नहीं हुआ करते हैं। संसार में प्रत्येक कर्म विशेष नियम के आधार पर हुआ करते हैं। कारण और कार्य का नियम सब जगह काम करता है।

६७२. मन भी माया है। यह सूक्ष्म माया है। यह तन्मात्रा से बना है।

६७३. एक कृष्ण भक्त सब स्थानों में कृष्ण ही कृष्ण देखता है। उसकी योग दृष्टि हो जाती है और उसका आध्यात्मिक भाव हो जाता है।

६७४. अपने आपको संसार से पृथक समझना मूर्खता है। संसार को दुःखी करने में आप ही दुःखी होता है। दूसरों से प्रेम करने में अपने ही से प्रेम करना है। भेद मृत्यु है। अभेद सनातन आनन्द है।

६७५. संसारी आदमी के लिए मौन मृत्यु है परन्तु योगी के लिए जीवन है। संसारी आदमी के लिए बातें करना जीवन है परन्तु योगी के लिए मृत्यु है। योगी और संसारी दोनों का मार्ग एक दूसरे के विपरीत है।

६७६. घृणा का अन्त घृणा से नहीं होता वरन प्रेम से होता है।

६७७. प्रारब्ध का निर्माण करने वाले तुम ही हो। तुमने ही अपने कर्मों द्वारा अपने प्रारब्ध को बनाया है। तुम ही अपने प्रारब्ध के स्वामी हो। अपना विचार शैली का परिवर्तन करो। मूर्खता से यह विचार मत करो कि मैं शरीर हूं, उसके स्थान में यह विचार करो कि मैं सर्व व्यापक आत्मा हूं।

६७८. वेदान्त ही केवल ऐसा दर्शन शास्त्र है जो मनुष्य की आत्मा को ऊपर उठाता है। सब दर्शन इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। यह वेदों का मत है। इसके द्वारा अशान्त, दुःखी और निराश मनुष्य में शक्ति, शान्ति और उत्साह की वृद्धि होती है।

६७९. जिस तरह काले बादल सूर्य को आच्छादित कर लेते हैं, उसी प्रकार अहंकार और वासनाएं ज्ञान सूर्य आत्मा को छुपा लेते हैं।

६८०. अहंकार मनुष्य की सब से अधिक हानि करने वाली कमजोरी है। अहंकार का दूसरा रूप अज्ञान है। शक्ति, बुद्धि, सुन्दरता, धन और इसी प्रकार के साधारण गुणों का मनुष्य को नशा हो जाता है। अहंकार की जड़ भी बहुत गहरी है। नम्रता और विचार से इसको समूल नष्ट करना चाहिए।

६८१. युद्ध में लड़ना तो सहज है परन्तु

निष्काम भाव से अहंकार और मान का परित्याग किए कुछ दान देना बड़ा कठिन है।

६८२ शुभ कर्मों का शुभ फल मिलता है और अशुभ कर्मों का अशुभ फल मिलता है। प्रत्येक कर्म का मीठा या कड़ुआ अवश्य फल मिलता है। यदि तुम साक्षी आत्मा से अपना सम्बन्ध रक्खो तो तुम को कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ेगा।

क्षमा और प्रेम के शस्त्र से क्रोध की जड़ को नष्ट कर दो, विवेक, विचार और ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा काम का मूलोच्छेदन कर डालो, उदारता और बुद्धि द्वारा लालच को मिटा दो, सत्य से असत्य का नाश करो।

६८४. प्रत्येक आदमी दूसरों ही का दोष देखता है परन्तु अपनी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देता। व्यर्थ ही मनुष्य यह ख्याल करता है कि मैं पूर्ण हूं। अपने को तो मनुष्य यह समझता है कि मैं सुलेमान और लुकमान की भान्ति बुद्धिमान हूं और दूसरे को अज्ञानी व मूर्ख समझता है। यह सब माया के पर्दे के कारण है।

६८५. जीवन महान् सागर की भान्ति है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इसके पांच जल हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह ग्राह और हैं व मछली की भान्ति हैं। जन्म व मृत्यु अन्य मछलियों की भान्ति हैं। बुद्धिमान पुरुष आत्म संयम और विचार की नौका द्वारा इस सागर को पार करें।

६८६. यदि मनुष्य यह चाहता है कि मैं शक्तिशाली बन जाऊं तो उसको चाहिये जुआ खेलना, शराब पीना, फजूल खर्ची, अधिक सोना, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता को छोड़ दे।

६८७. जो मनुष्य अपने यौवन को उत्तमता और नेकी से व्यतीत करता है वह बुढ़ापे में प्रसन्न रहता है। दूसरे मनुष्यों के साथ ऐसा व्यवहार करो और उनके साथ वैसी वाणी बोलो जैसी तुम अपने साथ चाहते हो।

६८८. यदि तुम्हारा जीवन इस संसार में उत्तम रहेगा तो परलोक में भी तुमको आनन्द रहेगा।

६८९. उत्पात करने वाले आश्चर्य की बातें कहने वाले और निन्दा करने वाले लोगों के साथ लड़ते रहते हैं इससे आपस में द्वेष घृणा और अशान्ति हो जाती है ऐसे लोगों को स्वप्न में भी एक क्षण के लिए शान्ति नहीं मिलती और उनका जीवन गली के कुत्ते की भान्ति व्यर्थ जाता है वह लोग दया के पात्र हैं।

६९०. घृणा के भाव घृणा से दूर नहीं होते बल्कि प्रेम से दूर होते हैं। दूसरों कि बुराई सोचने से अपनी हानि होती है दूसरों से प्रेम करने से अपने ही में प्रेम का प्रकाश होता है यही कर्म का सिद्धान्त समझने योग्य है यह नियम बहुत सूक्ष्म है इसको समझने से आनन्द की प्राप्ति होगी जब तुम्हारे मन में विपरीत भावनाओं का अंश प्रवेश कर जावे तो ब्रह्म के डण्डे से उसे निकाल दो निरन्तर यह ध्यान रक्खो मैं ब्रह्म हूं।

६९१. संसारी लोगों के लिए परमात्मा के दर्शन करना कठिन नहीं है ईश्वर के दर्शन करना कठिन नहीं है वह प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक स्थान में है वा तुम्हारे दिल में बैठा हुआ है सदैव उस का ध्यान करो।

६९२. उसके सगुण रूप का नाम ईश्वर अल्लाह हरि बुद्ध शिव इत्यादि है निराकार का नाम ब्रह्म है हर्बर्ट स्पेन्सर इसको अज्ञात कहता है, कुरान हायर इसको शक्ति कहता है और स्पेनूजा इसको पदार्थ कहता है। ओ हरि ! मेरी श्रद्धा भक्ति अनन्त

अन्य होने पर भी कम न हो केवल वही भिक्षा मांगता है।

६९३. अनुभवी पुरुष विजय के लिये युद्ध के वाद विवाद में नहीं पड़ते वह सब में परमात्मा को देखता है फिर किससे वाद विवाद करे।

६९४. मनुष्य को चाहिये कि अपने साथ में की हुई बुराई को भूल जावें परन्तु भलाई को कभी नहीं भूले। इलाघन पुरुष के लिए शान्ति नहीं है।

६९५. जिस गुरु के द्वारा अज्ञान ब्रह्म को जानते हैं गुरु जो ब्रह्म निष्ठ हैं उनकी सेवा करके और उनकी आज्ञा अनुसार कर्म करके भी ज्ञान सकते हो।

६९६. शून्य से किसी पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होता। भाव की भाव से ही उत्पत्ति होती है। भिन्न भाव से वेदान्तिक ऐक्य भाव उत्पन्न होता है। सत्य अनुभव एक है। सत्य धर्म एक है, सत्य धर्म अध्यात्मिक जीवन है जो इन्द्रियों से परे है सत्य धर्म आत्मा का अनुभव है, सत्य धर्म परमात्मा का अनुभव करना उसके दर्शन करना और उससे वार्तालाप करना है। लय होना कार्य का कारण में मिल जाना है कार्य कारण के अन्तर कुछ भी नहीं है।

६९७. यदि तुमको अहिंसा के नियम में परिपक्वता हो जावे अर्थात् मन वचन कर्म से तुम किसी प्राणी को भी कष्ट नहीं दो तो तुम स्वयं परमात्मा बन जाओगे।

६९८. जड़ प्रकृति संसार का नित्य कारण नहीं हो सकता यह जड़ है सर्व शक्तिवान् परमात्मा ही इस नियम पूर्वक जगत की उत्पत्ति करता है हो सकता है।

६९९. कालवादी कहते हैं काल ही जगत् का उत्पत्ति कारण है काल ही सब कुछ है काल ही परमात्मा है काल ही निःसन्देह जगत् का बीज है काल ही समस्त पदार्थों को अपनी इच्छानुसार चलाता है परन्तु यह काल अनन्त में बिन्दु मात्र है अनन्त ब्रह्म है।

७००. द्रव्य गुण समवाय विशेष सामान्य कणाद के वैशेषिक दर्शन के छः द्रव्य हैं।

७०१. प्रस्ताव तर्क उदाहरण परिणाम न्याय के पांच अवयव हैं प्रत्यक्ष अनुमान शब्द और आप्त न्याय के अनुसार चार चार प्रमाण हैं।

७०२. जब तुम किसी आदमी की सेवा करो तो बदले में कुछ न लो परन्तु उसको धन्यवाद दो कि उसने तुमको सेवा का अवसर दिया है।

७०३. संसार में न तो कुछ भलाई है न कुछ बुराई है न सुख है न दुःख है। प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों के अनुसार भलाई बुराई सब उत्पन्न कर लेता है।

७०४. साक्षात्कार कर्म द्वारा नहीं हो सकता है अहमा विवेक विचार निदिध्यासन आत्मा की खोज और ध्यान से प्राप्त हो सकता है।

७०५. वह मनुष्य जो आत्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्न न करके स्वार्थ से नाशवान पदार्थों के एकत्र करने में लगा रहता है वह जीवित भी मृत्यु सा है वह दया का पात्र है।

७०६. तुम्हारा वर्तमान जीवन भूत काल कर्मों का फल है और भविष्यत वर्तमान कर्मों का फल है।

७०७. ज्ञानी समस्त जगको अपने आपे में स्थिर देखता है और सबको एक आत्मा समझता है।

७०८. जिसको उपनिषदों ने ब्रह्म कहा है और श्रुतियों ने परमात्मा कहा है उसीको भागवत् ने भगवान कहा है।

७०९. परमात्मा के विचार उस चित्त में प्रवेश नहीं होते जो संसारी वासनाओं और संसारी

विषयों से घिरा रहता है ऋषि सांसारी चित्त के पुरुष को गली का कुत्ता ग्राम का शूकर कहते हैं जो कीट की भांति—विष्टा में रमण करते हैं यह उदाहरण निःसन्देह ठीक है।

३१०. जो आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हैं उनको सब पदार्थ मिल जाते हैं जिनकी वह इच्छा करते हैं वो चिन्तामणि कल्प वृक्ष कामधेनु की की भान्ति हैं जिनके द्वारा मनुष्यों की सब इच्छा पूर्ण हो जाती हैं।

३११. यह परमात्मा मेरे समस्त पापों को पूर्ण रूप से क्षमा करदे मैं चंचल इन्द्रियों को और मन को वश करने में असमर्थ हूं मेरे स्वामी मैं क्या करूं मैं विवश हूं इस जीवन में जो अनेक प्रकार की कठनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं मैं उनसे भय-भीत हो जाता हूं मैं कहां जाऊं तेरे चरण कमल ही मेरा आश्रय स्थान है मैं तेरे चरण कमलों में बारम्बार प्रणाम करता हूं मुझको दुःखों के अथाह समुद्र से ऊपर उठा जिसमें मैं डूबा हुआ हूं। मेरे स्वामी! त्राहि २ दयानिधान् २ यह संसार भलाई बुराई से मिल कर बना है यह कुत्ते की पूंछ की तरह टेढ़ा है। बहुत अवतार और बहुत पैगम्बर इसको ठीक करने आये हैं परन्तु यह फिर भी टेढ़ा ही बना हुआ है इसका सुधार करने में कोई समर्थ नहीं है फिर तुम क्यों चिन्ता करते हो। पहले अपना सुधार करो और संसार वासनाओं से ऊपर हो जाओ।

३१२. वैराग और त्याग केवल चित्त कि अवस्था है संसार में भी रहना और संसार से अलग भी रहना पूर्ण त्याग का प्रमाण है।

३१३. जो आदमी अपनी त्रुटियों का इसी प्रकार अवलोकन करता है कि जिस प्रकार दूसरों की त्रुटियों का वो शीघ्र ही महा पुरुष बन जाता है जो प्रेम तुम अपने स्त्री पुत्र धन सम्पत्ति से करते हो वही प्रेम यदि तुम परमात्मा से करो तो तुम को परमात्मा की प्राप्ति एक मिनट में हो जायगी। संसार बड़ा शिक्षक है दंभपूर्ण तुम्हारे गुरु हैं बहुत कड़वे पाठ पढ़ने के पश्चात् तुम मनुष्य और बुद्धिमान् हो जाओगे।

३१४. तुम प्रकृति को विजय पाने के लिए उत्पन्न हुए हो इसलिए आत्मा का साक्षात् करो बुराई के बदले भलाई करो। बुरे करने वाले को धिक्कार हो।

३१५. शरीर को जल से शुद्ध करो और मन को सत्य से और ध्यान से यदि तुमको अपनी वाणी पर अधिकार है तो तुम सुरक्षित और शांत रह सकते हो।

३१६. भक्ति प्रयत्न और कर्म द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती यह प्रभु की कृपा और दया से ही प्राप्त हो सकती है। यह कृपा साध्य है क्रिया साध्य नहीं।

३१७. यदि तुम करोड़ कल्पों तक भी प्रयत्न करो तो तुमको परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते परन्तु यदि तुम परमात्मा की दया के पात्र बनजाओ तो पलक झपकने में दर्शन मिल सकते हैं इसलिये अपने आप को परमात्मा के चरण कमलों में अर्पण करदो और सच्चे दिल से कहो कि मुझ पर दया करो।

३१८. परमात्मा कारण और कार्य से परे है देश काल से भी परे है वाणी और मन से भी परे है परन्तु निकट से भी निकट है और प्रत्येक प्राणी के चित्त में वास करता है।

३१९. ऐ मन मैंने तुझको हजारों बार शिक्षा दी है कि तू अपने भ्रम को छोड़ दे और परमात्मा के चरण कमलों का आश्रय ले या तो भ्रम को छोड़दे अन्यथा मैं तुझको मृत्यु के घाट पर पहुंचा दूंगा।

३१९. सच्चा संन्यास मन में होता है संन्यास चित्त की अवस्था ही का नाम है यदि कोई आदमी स्त्री पुत्रों को छोड़ कर संन्यासी बन जाय और चित्त से उनका ख्याल करे वो तो संन्यासी नहीं है

३२० गंगा का जल चाहे पृथ्वी पर बहता हो चाहे बोतल में बन्द हो गंगा जल है इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा एक ही है।

३२१. गिद्ध आकाश में ऊंचा उड़ जाता है परन्तु उसका चित्त मरे हुए जानवरों पर रहता है मक्खी मिठाई पर भी बैठती और गोबर पर भी इसी प्रकार बहुत से मनुष्य उच्च सिद्धान्त की बातें करते हैं परन्तु उनका चित्त काम वासनाओं में फंसा रहता है उनका चित्त भिन्न २ प्रकार की वासनाओं में रहता है।

३२२. ओ एम. एस. सी के विद्यार्थी अपने चित्त को रसायण क्रिया के नियमों में लगा कर समय को नष्ट न करो रेत को चौदह सौ दर्जे कि गर्मी पहुंचा कर शीशा बना ने में समय नष्ट मत करो कारखाने खोलने के विचार को दिल से दूर करदो इससे तुमको शान्ति नहीं, प्राप्त होगी। अपने चित्त की परीक्षा करो और सात्विक राजस तामस गुणों को पहचानो और अपने चित्त में भगवान् कृष्ण का स्वर्ण मन्दिर बना कर उसकी पूजा करो उसका नाम जपो।

३२३. ओं नमो भगवते वासुदेवाय मन्त्र का जाप करो तुम्हारे तमाम दुःख मिट जायगें तुमको सर्वोच्च उपाधि मिल जायगी उस उपाधी का नाम सत् चित् आनन्द ब्रह्म है।

॥ त्रोटक छन्द ॥

(रचियता श्री महात्मा सच्चिदानन्द जी सरस्वती)

जय गोप सखा ब्रजराज हरी।
मुरली धर माधव कंस अरी ॥ टेक ॥
तुम देवकि कूखहि जन्म धरे।
वसुदेव पिता जु भये तुमरे,
पठये तुम गोकुल ताहि घरी ॥ १ ॥

तुमरे पितु प्राण बचावन को,
नंद द्वार चले पहुंचावन को।
पग छूवत ही यमुना उतरी ॥ २ ॥

नंद राय खुशी सुत पायलियो,
पय श्री यशुधा तन पान कियो।
यशुधा जब मात बनी तुमरी ॥ ३ ॥

तब सोच किया सुन कंस बली,
पठि पूतनि मारन हेत चली।
विष व्याकत नाथ हनी सघरी ॥ ४ ॥

सकटासुर और अघासुर को,
पल में दिया मार बकासुर को।
तृन शक्ति लई नख धार गिरी ॥ ५ ॥

तुम मुष्टक से बलि मंद हते,
हत कंस बली तुम पाइ फते।
पितु मात कियद् खलास करी ॥ ६ ॥

फिर कंस पिता छिति नाथ किये,
भुव में महि भार उतार दिये।
ऋषि देवन की सब विपत हरी ॥ ७ ॥

तुम गोपिन के संग रास रचे,
युवती सखि संग जु आप नचे।
लखि आनंद देव वधू सगरी ॥ ८ ॥

दुःख द्रौपदि पार प्रभु सुमरें,
रखि लाज हरि शरणे तुमरे।
किय चीर अनन्त जु बात सही ॥ ९ ॥

दिये पांडव पंच जिता रणमें,
दुर्योधन आदि हने क्षण में।
बन सारथि बाग गही तकर ॥ १० ॥

तुम दीनन के हितकार सदा,
करते भक्तों सन प्यार सदा।
गणिका गिद्ध उबरी कुबरी ॥ ११ ॥

प्रहलाद ध्रुव हनुमान तरे,
जु विभीषण नाम रटे तुमरे।
शरणागत की बहुयां पकरी ॥ १२ ॥

धन रात्रि सदा कपटी मनको,
मति भ्रान्त दिना मधुसूदन को।
मन स्वान दया उसकी विसरी ॥ १३ ॥

हरि ही इक और सहायक है,
वहि पार लगावन लायक है।
नहिं मानहे रसना कपरी ॥ १४ ॥

महात्मा इब्राहीम हाशाम*

(ले० श्री ला० सुनकरणदास जी)

इब्राहीम आदम पहिले राजा थे, परन्तु पीछे उन्होंने सर्वस्व छोड़ कर फकीरी ले ली थी। वे ईश्वर से डरने वाले, सत्य निष्ठ और कठोर साधक थे। उनका धर्म प्रेम, ईश्वरानुराग और व्याकुलता अनुपम थी। उन्होंने अनेक सन्त महात्माओं की सेवा की थी। और प्रमुख धर्माचार्य "हनिफ" के सहवास में वे अधिक रहे थे। महर्षि "जनीदन" कहते हैं कि इब्राहीम ज्ञान की वाटिका रूप थे। 'अबुल्हनिफ' के सामने उनके सहवासियों ने एक बार इब्राहीम की अवज्ञा की। इससे "अबु हानिफ" नाराज होकर बोले कि "ऐसा न करो" इब्राहीम तो हमारे सन्मान के योग्य हैं" क्योंकि वह हमेशा प्रभु स्मरण में ही मग्न रहने वाले हैं। और हमारी तरह और बातों में समय नहीं गंवाते।

इब्राहीम पहिले बलख के राजा थे। उस समय एकबार वह राज महल की ऊपर की मंजिल में रात्रि के समय सोये हुये थे। वहां उन्होंने किसी के पैरों की आहट आती हुई सुनी। यह शब्द इतने जोर से हो रहा था कि सारा महल गूंज रहा था। इससे चमक कर वह बोले "कौन है"। आने वाले ने कहा 'घबराओ नहीं' मैं तुम्हारा शत्रु नहीं, परन्तु मित्र हूं। मेरा ऊंट खोया गया है वह खोजने के लिये यहां आया हूं। इब्राहीम बोले इतने ऊंचे कमरे पर क्या ऊंट चढ़ सकता है? तू यह क्या बहकी हुई बात करता है? आने वाले ने कहा कि "अरे मूर्ख! तू फिर क्यों इतने ऊंचे राज महल में स्वर्ण के आसन पर बैठ कर तथा बहु मूल्य वस्त्र पहिन कर ईश्वर की खोज की इच्छा कर रहा है? तू विचार कर देख तो कि तेरी दशा क्या राज-महल के ऊपर ऊंट को ढूंढने जैसी नहीं है? मेरी बात से तुझे आश्चर्य किस बात का हुआ? इतना कह कर आने वाला मनुष्य तुरन्त अदृश्य हो गया। इन वचनों का इब्राहीम के दिल पर आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ा। उसके हृदय में अशान्ति की ज्वाला भभक उठी। उसके दिन शोक और चिन्ता में व्यतीत होने लगे। इतने में एक और दूसरा बनाव बना। एक दिन वह अपने सभासदों सहित सभा मंडप में राज कार्य की जांच कर रहे थे इतने में वहां एक दम एक तेजस्वी पुरुष पधारे। उस आने वाले पुरुष से "तुम कौन हो" इतना पूछने की भी किसी

---

* राहबरी से अनूदित

की हिम्मत नहीं पड़ी। सारे के सारे सभासद इस प्रकाशशाली पुरुष को देख कर चित्र लिखे से रह गये। यह तेजस्वी पुरुष सीधा सिंहासन के पास आकर खड़ा हो गया। इब्राहीम ने उससे पूछा—"आप क्या चाहते हैं?

आने वाले ने कहा—और कुछ नहीं इस मुसाफिर खाने में आज के दिन ठहरना चाहता हूं।

इब्राहीम बोले—यह मुसाफिर खाना नहीं, राजमहल है।

आने वाले ने कहा—तुमसे पहले इस राजमहल को कौन बरतता था?

इब्राहीम—मेरे पिताजी।

आने वाला—उससे पहिले कौन उपयोग करता था?

इब्राहीम—मेरे दादा जी।

आने वाला—उनसे पहिले?

इब्राहीम—उनके पिता।

इस प्रकार कितने कप्रश्नोत्तर हुये। पश्चात् आने वाले ने कहा कि "जब इस मकान में नये २ आदमी आते रहे हैं और पुराने २ जाते रहे हैं तो फिर इसको मुसाफिर खाना क्यों न कहा जाय? इतना कह वह आने वाला वापिस जाने लगा। इब्राहीम उसके पीछे २ चलने लगे। थोड़ी दूर जाकर उसे पकड़ कर पूछा "आप कौन हैं?" उन्होंने कहा कि मेरा नाम "खिजर है" इतना कहते ही वह तेजस्वी पुरुष अदृश्य हो गया। इब्राहीम के हृदय में अब वैराग्य की अग्नी भभक ने लगी और उन्हें संसार में बिलकुल चैन नहीं पड़ता। एक दिन वह अपने नौकर के साथ घोड़े पर चढ़ कर वन में गये। वन में उन्होंने इधर उधर भ्रमण करना आरम्भ किया। इस कारण वह अपने नौकरों से बिछड़ गये। वहां अकस्मात शब्द हुआ "जाग" इब्राहीम विह्वल होकर इधर उधर देखने लगा। परन्तु बोलने वाला कोई भी दिखाई नहीं दिया और दूसरी बार तीसरी बार वही आवाज बार बार सुनी। "यह कौन बोलता है, यह न जान सकने के कारण राजा आश्चर्य चकित हो गया। जब उसने चौथी बार सुना कि मृत्यु आकर तुम्हें जगावे उससे पहले ही अपनी मरजी से जाग उठो।"

इस प्रकार के वैराग्य सूचक शब्द सुन २ उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ा और बहुत विचार में पड़ गया। मन संसार से उपराम होने लगा। और जिस २ प्रकार मन में संसार की माया निकलती गई उस उस प्रकार सत्य का प्रकाश होने लगा। स्वर्ग का द्वार उसके लिये खुलने लगा और ईश्वरीय प्रकाश ने उसके हृदय में प्रवेश किया। पश्चात्ताप के कारण उसके नेत्रों में से आंसुओं की धारा बहने लगी। और इस अश्रुधारा में उसके वस्त्राभूषण भीज गये। वन के राजमार्ग को छोड़ कर वह उस वन के एक कोने की तरफ जाने लगे। वहां उन्होंने एक रक्षक को देखा। वह रक्षक शरीर पर फटे पुराने कपड़े पहिने हुये था। इसकी टोपी एक चीथड़े के आकार की थी इब्राहीम ने अपने मूल्यवान वस्त्रालंकार तथा हीरा जड़ित मुकुट इस रक्षक को दे दिये और उसके फटे हुये कपड़े तथा टोपी स्वयं धारण की। बलख़ का राजा राजवेश छोड़ कर एक साधारण भिखारी बन गया। इस प्रकार राज सिंहासन छोड़ कर जब वह भूमि के ऊपर उतरे तभी उन की दृष्टि में देव लोक का प्रकाश हुआ। जिस समय इस पृथ्वी का राज्य उन्होंने छोड़ा तभी वह प्रभु के अलौकिक राज्य पाने के अधिकारी बने। वह पैदल दीन वेश में वन और पहाड़ों में भटकने

लगे। और अपने पापों के लिये शोक करने लगे। इस प्रकार कितनेक समय तक भटकने के बाद नेशापुर नगर के पास एक गुफा में इब्राहीम ने निवास किया। और वहां लगभग नौ वर्ष व्यतीत किये। उन्होंने एकान्त में रह कर अपने अन्तः शत्रुओं के साथ दीर्घ काल तक लड़ाई लड़ कर उन्हें पराजित किया। वहां वह अपना गुजारा किस प्रकार करते थे? इस बारे में लोग कहते हैं कि जब वह भूखे होते, तब वह गुफा से बाहर आते, जंगल में से लकड़ी इकट्ठी करके भरोटा बांधते और उसे सिर पर उठा कर नेशापुर में बेच आते। इससे जो कुछ द्रव्य मिलता उसमें से आधा तो वह दीन दुखियों को दान करते और बचे हुये से अपना निर्वाह करते। शुक्रवार को नेशापुर की मसजिद में नमाज पढ़ने के लिये आते इस प्रकार नौ वर्ष पर्यन्त उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया इस गुफा में वह अनेक बार संकट में पड़ गये थे परन्तु ईश्वर की कृपा ने इनकी रक्षा की। एक बार यह बर्फ के ढेर के नीचे दब गये थे और दूसरी बार एक अजगर के मुख में आ पड़े थे परन्तु "राम रखे उसको कौन मारे"।

ऐसा सुना जाता है कि जब इब्राहीम राजपाट छोड़ कर वन में चल निकले, तब उनको एक धर्म्म परायण पुरुष मिला। उसने इब्राहीम को प्रभु के नाम रूप महा मन्त्र की दीक्षा दी। इसी नाम का इब्राहीम जप करने लगे। थोड़े समय पश्चात् महात्मा खिज्र के साथ इब्राहीम का समागम हुवा। महात्मा खिज्र ने कहा कि आपको जिसने दीक्षा दी है वह मेरा भाई आलियास है उस समय इनकी खिज्र के साथ बहुत सारी धर्म्म सम्बन्धी तथा ईश्वर सम्बन्धी बात चीत हुई। महा पुरुष खिज्र के प्रताप से इब्राहीम के जीवन में बड़ा फेर फार होगया। एक हिसाब से खिज्र ही उनका गुरु था। इन्हीं महात्माओंके उपदेश से इब्राहीम ने राजपाट का त्याग किया था यह पहले कहा ही जा चुका है।

चौदह वर्ष तक इब्राहीम भिन्न २ स्थलों में रहते रहे। वनों तथा रास्तों में उन्होंने अनेक स्थानों पर प्रभु की उपासना और प्रार्थना की थी। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत करके वह मक्का की तरफ चले। वह मक्का से थोड़ी दूर चले थे कि मक्का निवासी महापुरुष को महात्मा इब्राहीम के पधारने के समाचार मिले। अतएव मक्का में उनके पधारने के उपलक्ष स्वागतार्थ तैयारी होने लगी। तपस्वी इब्राहीम को इस बात की खबर होगई। इस से उन्हें कोई पहिचान न सके इस कारण से एक व्यापारी के काफिले में शामिल हो गये। मक्का निवासियों ने इब्राहीम की बड़ी खोज की परन्तु पता नहीं लगा।

एक मक्कावासी ने ढूंढते २ काफिले में रहने वाले इब्राहीम से पूछा कि यहां तपस्वी इब्राहीम को आपने देखा है? मक्का के सज्जन पुरुष उनका सत्कार करना चाहते हैं।

इब्राहीम बोले—अरे मक्कावासी भोले मनुष्यो तुम्हें इस महापाखंडी इब्राहीम से क्या काम है? उस से तुम्हें क्या लाभ होगा?

यह वचन सुनकर मक्कावासी उत्तेजित हो गया और इब्राहीम का गला पकड़ कर जूते मारते मारते कहा कि मूर्ख ऐसे महापुरुष को तू पाखंडी कहता है इस से विदित होता है कि तू ही भारी पाखण्डी है।

इस प्रकार अपमान होने पर भी यह शान्त रहे और बोले कि भाई मैं भी यही बात कहता हूं कि मैं पाखण्डी हूं फिर अपने मनमें कहने लगे कि हे दुष्ट!

पत्र उनके सुपुर्द कर चला दिया। फिर वह प्रभु की आराधना करने लगे। इस से उस आदमी ने समझ लिया कि यह आप ही इब्राहीम हैं। तब उसने रो कर क्षमा मांगी। परन्तु महात्मा ने उसे हंसते २ कहा इसमें क्या हुआ? तैंने ठीक ही कहा है मेरा अपना मन कितना पाखण्डी है यह मैं ठीक २ जानता हूँ। पश्चात् वह मक्का में रहे और उन को कितनेक साधकों का समागम हुआ और वह उन के मित्र हुये। मक्का में भी वह अपने शरीर से परिश्रम करके ही निर्वाह करते रहे। जंगल में जा कर लकड़ी काट कर लाते और उन्हें बेच कर रोटी मोल लेते। राज पाट छोड़ते समय उनके एक दूध पीता पुत्र था वह पुत्र बड़ा हुआ तब वह अपनी माता के साथ मक्का आया और अपने पिता से मिलने के लिये तड़पने लगा। महात्मा इब्राहीम का नियम था कि वह नित्य सवेरे जंगल में चले जाते और शाम होने पर मक्का में वापिस आते। और लकड़ी या घास मिलती तो कुछ जंगल में से लाते उसे बेच कर रोटी लेते और गरीबों तथा फकीरों को खिलाकर शाम की नमाज पढ़कर आप खाते। कभी २ आटा खरीद कर अपने हाथसे रोटी लेते और दीन दुःखियों को खिलाते। राजकुमार ने देखा कि उसके पिता सिर पर लकड़ियों का गट्ठा उठाये धीरे २ कदमों से मक्का में चले आ रहे हैं। यह हृदय मोहक दृश्य देख कर पुत्र व्याकुल होकर रोने को होगया। अपने स्वामी की दीन दारिद्र दशा देख कर रानी भी रो पड़ी। इस प्रसंग का वर्णन कलम कैसे करे? काबा मन्दिर के समीप में ही पिता पुत्र का यह मिलाप हुआ था। इब्राहीम ने अपने पुत्र से प्रेम पूर्वक मिल कर कुशल समाचार पूछा। फिर वह पुत्र भी मक्का में ही रहा और वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ।

एक रात्रि को इब्राहीम का एक साथी यकायक बहुत बीमार होगया। सर्दी की रात्री थी। ज़ोर से हवा चल रही थी और जिस झोंपड़ी में वह थे उस के दरवाज़े के किवाड़ तक नहीं थे। इस से इब्राहीम सूर्योदय तक दरवाज़े में ही खड़े रहे। रोगी ने पूछा तुम ने ऐसा क्यों किया? इब्राहीम बोले तुम्हारा शरीर बीमार तथा निर्बल है। ऐसे शरीर को जो ठण्डी हवा लगे तो तकलीफ बहुत बढ़ जावे इस लिए ऐसा न हो मैं दरवाज़े में खड़ा हुआ था कितनी दया?

एक दूसरे मनुष्य ने सुनाया कि "मैं एक बार महात्मा इब्राहीम के साथ सफर में था। रास्ते में मुझे बीमारी हो गई। तब उन्होंने जो कुछ उन के पास था सब मेरी बीमारी में खर्च कर दिया और जब उनके पास कुछ भी नहीं रहा तो उन्होंने मेरा खच्चर बेच कर मेरी बीमारी में लगाया। जब मैं स्वास्थ हुआ तो मैंने उन से पूछा कि मेरा खच्चर कहां है उन्होंने कहा कि उसे तो बेच देना पड़ा है" मैंने कहा कि मैं किस पर बैठ कर सफर करूंगा? उन्होंने कहा मेरे कन्धों पर बैठना। उन्होंने तीन दिन तक मुझे कन्धों पर बिठला कर सफर करवाया।

महात्मा इब्राहीम जंगल में निर्जन प्रदेश में रहा करते थे। वहां एक बार ऐसा बनाव बना कि एक दिन उन्हें खाने को कुछ नहीं मिला। तब उन्होंने इस बात के लिए ईश्वर का अत्यन्त धन्यवाद किया और सारी रात्रि भर उपासना करते रहे। दूसरे दिन भी खाने को नहीं मिला वह दिन भर ध्यान भजन में व्यतीत किया। इस प्रकार अन्न बिना सात दिवस बीत गये इस से उनका शरीर बहुत अधिक अशक्त हो गया। तब इब्राहीम बोले 'कि हे प्रभो! जो अब खाने को दे तो ... ...

इतना कहना था कि एक युवक उनके पास आया और बोला कि "क्या तुम अपनी निर्धनता दूर करना चाहते हो? इब्राहीम ने कहा हाँ ऐसी इच्छा तो है" फिर वह युवक बड़े आदर से अपने मकान पर लेगया वहाँ जब उसने जाना कि यह तो महात्मा इब्राहीम हैं तो बड़ा खुश हुआ और बोला "अहो! कौन? महात्मा इब्राहीम! पधारो, पधारो मेरे धन्य भाग, कि आप के पवित्र चरण कमल मेरी झोंपड़ी में फिरे। मैं तो आप का दास हूं। यह मेरा जो कुछ भी धन है वह मैं आपके चरणों में समर्पण करता हूं मैं आप का नौकर बनकर रहूंगा। इब्राहीम बोले-भाई तैंने मुझे जो देना चाहा है वह मैं तुझे वापस देता हूं और मुझे आज्ञा दे कि मैं अपने रास्ते पर चला जाऊं इतना कह कर वह वहाँ से चल पड़े और आकाश की तरफ देख कर प्रभु का स्मरण करके बोले कि "हे पवित्र परवरदिगार खुदा! मैंने तो केवल इतना ही चाहा था कि जब भूख लगे तो मुझे कुछ खाने को दो। रोटी के अतिरिक्त और कुछ नहीं मांगा था। आप मुझे सांसारिक धन का किस कारण लालच दे रहे हैं।

(अपूर्ण)

विष्णु भक्त।

[ले० पं० गंगाविष्णु पाण्डेय विद्यालङ्कार "विष्णु"]

विष्णु भक्त भूमि पर स्वर्ग सुख भोगते हैं,
स्वप्न में इन्हें नहीं सताती शोक रूपी धूप।
विष्णु भक्त के इशारों लोग चाहे हुए पैर,
और हाथ जोड़ते हैं जिनके किन्हें सुरूप॥
विष्णु भक्त भक्ति में छुड़ाते पापियों के पाप,
खाली पड़े रहते हैं नैरवादि अन्ध कूप।
विष्णु भक्त विश्व को ही विष्णुमय देखते हैं,
विष्णु व्याप्ति विश्व में है, विष्णु भक्त हैं अनूप॥

भक्तों की रीति भांति कैसी होती है।

[ले० श्री स्वामी आत्मानंदजी]

भक्त गण दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा प्रभु को अधिक चाहते हैं, तथा दूसरी और वस्तुओं को भी इसीलिये चाहते हैं कि वह प्रभु की दी हुई हैं और इसे चाहने के लिये प्रभु ने आज्ञा दी है, इसके आवश्यकतानुसार इन वस्तुओं की इच्छा रखते हैं। मा बाप, रोजगार धन्धा, खाना, पीना तथा और भी इसी प्रकार जीवन की आवश्यक वस्तुओं का तथा जीवन के कर्तव्यों का प्रभु प्रेम के लिए ही भोग करते हैं और सब को प्रभु की दी हुई समझ कर प्रथम प्रभु को अर्पण कर अपनी चाह के अनुसार चाहते हैं। किन्तु ऐसी लौकिक चाहना की बनिस्बत भक्तों की आत्मा प्रभु प्रेम द्वारा ईश्वर के अलौकिक स्वरूप के आनन्द में ही रमा करती है।

प्रभु प्रेम से हरिजनों के हृदय में उत्पन्न होने वाली इसी प्रकार के आनन्द की सच्ची खुशी अब तक समझ नहीं सके हैं। क्योंकि सांसारिक जंजालों को प्रधानता देते हैं और प्रभु को तो शायद ही कभी अपने हृदय में आने देते हैं। इस से पानी में रहने पर भी कमल का पत्ता जिस प्रकार पानी से भीगता नहीं उसी प्रकार व्यवहार में रहने पर सुख दुःख में लिप्त न हुए हों ऐसे प्रेमी भक्तों की उत्तमता का भी हम समझ नहीं सके हैं। प्रभु से भक्तों में आई उत्तमता कैसी होती है, इसके

संकल्प में बाधा उत्पन्न करते हैं महात्मा पुरुषों का अनुभव है।

जैसे जहाज चाहे जिस देश में घूमे, उस में रखे हुए कुतुबनुमा की सुई उत्तर दिशा की ओर ही रहती है, वैसे ही भक्त चाहे जिस स्थिति में हो चाहे जिस देश में हो, चाहे जो भाषा भाषी हो, और चाहे जो रोजगार करते हो, उनका अन्तःकरण तो प्रभु में ही रमा रहता है।

अरे नर हरि का हेत न जाना।
उपजाया सुमिरण के काजे तै कछु और ठाना॥
गर्भ माहिं जिन रक्षा कीन्ही हाँ भाने को दीना।
जठर अग्नि सों राखि लियो है अङ्ग सम्पूरण कीन्हा॥
बाहर आय बहुत सुधि लीन्ही दशन बिना पय प्यायो।
दांत भये भोजन बहु भांति हित सों तोहि खिलायो॥
और दिए सुख नाना विधि के समुझि देख मन माहीं।
भूलो फिरत महा गर्वाये तू कछु जानत नाहीं॥
तेरे कारण सब कछु प्रभु कीन्हों तू कीन्हा निज काजा।
अस प्रीतम पाके हौं बोलै तोहि न आवै लाजा॥
अजहीं चेत उस हरि सों ही जन्म सुफल करु भाई।
चरणदास सुखदेव कहैं यो सुमिरण है सुख दाई॥

होरी

कृष्ण ने कैसी होरी मचाई, अचरज लखी न जाई
असत सत कर दिखलाई॥ टेक॥
एक समय श्रीकृष्ण देव के होरी खेलन मन आई,
एक से होरी मचे नहिं कबहूं याते करूँ बहुताई।
यही प्रभु ने ठहराई॥ १॥
पांच भूत की धातु मिलाके अंड पिचकारी बनाई,
चौदह भुवन रंग भीतर भर नाना रूप धराई।
प्रकट भये कृष्ण कन्हाई॥ २॥
पांच विषय की गुलाल बनाकर बीच ब्रह्माण्ड उड़ाई,
जिस जिस आंख गुलाल पड़ी सो सुध बुध सब बिसराई।
नहीं सूझत अपनाई॥ ३॥
ब्रह्मज्ञान अंजन की सलाका जिसने नैन में पाई,
ब्रह्मानन्द सभी तम नाशे सूझ पड़ी अपनाई।
भरम की धूल उड़ाई॥ ४॥

२

सांवरो कैसी खेलत होरी अचरज खूब बन्योरी,
कोई जन भेद लह्योरी॥ टेक॥
ब्रज रंगभूमि बनि अति सुन्दर कानन बाग लग्योरी,
नाड़ी अनेक गली जहां शोभत खेले तहां कान्हर गोरी।
संग वृषभान किशोरी॥ १॥
पांच सखी मिल पांच रंग भर दैन बहोर चढ़ोरी,
राधिका लेकर डारे श्याम पर सब तन रंग भिगोरी
कृष्ण मन मोद भयोरी॥ २॥
होरी में मोद मानकर श्याम ने राधिका वेष धरोरी,
मिल सखियन संग फाग मचायो खेलत मगन भयोरी
आप सुधि भूल गयोरी॥ ३॥
खेलत खेलत जान न पायो दीर्घ काल गयोरी,
बन २ फिरत रूप तब जानो सखियन संग बिछोरी।
श्याम ब्रह्मानन्द निहोरी॥ ४॥

३

श्याम के संग खेलोरी होरी जन्म सफल कर लोरी,
सखी मिल आज चलोरी॥ टेक॥
धर्म हेतु हरि ब्रज मण्डल में आकर प्रकट भयोरी,
धन्य भाग्य यशुमती रानी के जिन घर जन्म लियोरी।
आप प्रभु दरश दियोरी॥ १॥
गल बनमाल विराजत सुन्दर शीश किरीट धरोरी,
कानन में मकराकृत कुण्डल कमर मणी लड़ डोरी।
चरण नूपुर झण कोरी॥ २॥

यमुना तट पर वंशी वट में ग्वालन संग खड़ोरी।
मुरली अधर मधुर धुन गावे नाचत मोद भयोरी।
मनोहर रूप बनोरी ॥ ३ ॥
सुरनर मुनिजन दर्शन कर कर मन में हर्ष बड़ोरी।
ब्रह्मानन्द चरण बलिहारी भक्ति दान दीजोरी।
सकल भव बन्ध हरोरी ॥ ४ ॥

४

आई बसन्त सखी री मिल खेलो होरी ॥ टेक ॥
घरके भूलगई गुरु काजन मनमें ताप रहोरी।
जिनर होरी खेली श्याम संग तिन बड़ भाग्य भयोरी
मिल खेलिये होरी ॥ १ ॥
तज सब काज आज घर केरे लाज को दूर धरोरी,
फागुन के दिन बीते जात हैं फिर पीछे पछतोरी।
मिल खेलिये होरी ॥ २ ॥
सतसंगति वृन्दाबन जाकर श्याम को खोज करोरी,
कर विचार जुगति से घेरो जाने न पावे बहोरी ॥
मिल खेलिये होरी ॥ ३ ॥
मन पिचकारी पकड़ कर सुन्दर ध्यान रंगसे भरोरी,
प्रेम गुलाल मलो मुख ऊपर, ब्रह्मानन्द रस लेारी।
मिल खेलिये होरी ॥ ४ ॥

५

देख सखी जगदीश्वरी कैसे होरी रचाई ॥ टेक ॥
पृथिवी रंग भूमि सुख दायक, गगन कितान लगाई,
वृक्ष वर्गीचे पर्वत सागर, नदियों नीर भराई।
री कैसी होरी मचाई ॥ १ ॥
एक ही रूप अनेक भांत कर सूरत युगल बनाई,
पशु पक्षी नर देव दनुज सब, मिलकर फाग मचाई।
री कैसी होरी मचाई ॥ २ ॥
बीज से बीज बनाकर नूतन रंगत खूब जमाई,
एक से एक मिलन नहीं पावे यह प्रभु की चतुराई।
री कैसी होरी मचाई ॥ ३ ॥
पांच विषय के रंग मनोहर नाना किसम सुहाई,
ब्रह्मानन्द जीव सब भर भर खेल करत सुखदाई।
री कैसी होरी रचाई ॥ ४ ॥

६

होरी कुंज गली में खेलत नन्द कुमार री ॥ टेक ॥
मोर मुकुट सिर ऊपर सोहे,
गल फूलन के हाररी।
पीताम्बर कटि बीच बिराजे,
पग नूपुर झनकार री ॥ १ ॥
ग्वाल बाल सब मिल कर खेलें,
संग ब्रज की नार री।
भर भर रंग परस्पर छोड़ें,
पिचकारिन की धार री ॥ २ ॥
लाल गुलाल अबीर उड़ावें,
केसर छुटत फुहार री।
भूषण बसन बदन सब भीने,
चाल चलत मतवारी ॥ ३ ॥
हाथ मिलाय मिलाकर नाचें,
राधा कृष्ण मुरारी।
ब्रह्मानन्द युगल छवि सुन्दर,
चरण कमल बलिहार री ॥ ४ ॥

७

मैं तो गुरु अपने से होरी खेलूँ मन धार री ॥ टेक ॥
प्रेम भाव का रंग बनाऊं भक्ति गुलाल सुधार री।
ज्ञान विवेक भरूं पिचकारी छोडूं बारंबार री ॥
योग मुक्ति चन्दन लेपूं ध्यान पुष्प गल हार री।
अनहद नाद बजाऊं सुन्दर सुरत नारत सिंगार री ॥
निगमागम के वाक्य मनोहर गायन करूं विचाररी।
मिल संतसगत फाग मचाऊं संशय सकल निवाररी ॥
एक रूप सब जगमें देखूं भेद भाव सब टार री।
ब्रह्मानन्द मगन मन निशदिन छूटे सकल विकार री ॥

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४. वेदोपनिषद्		।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६ ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
९. सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०. शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥
११. शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२. शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३. सारसंग्रह	"	।)
१४. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१५. मनुस्मृति सार	"	≡)
१६. भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१७. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१८. भगवदंक	"	॥।)
१९. गवांक	"	१।)
२०. महात्मांक	"	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।